श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

(जन जन की भाषा में)

राजेन्द्र कुमार गुप्ता

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

(जन जन की भाषा में)

राजेन्द्र कुमार गुप्ता

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

(जन जन की भाषा में)

निवेदन

महर्षि वाल्मीकि प्रणीत यह आदि काव्य 'श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्' एक अद्वितीय ग्रन्थ है जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का चरित्र एक मानव के रूप में वर्णित किया गया है जो मानव चरित्र का सर्वोत्तम उत्कर्ष दर्शाता है और यह सन्देश देता है कि मानव के लिए ऐसा आदर्श और अनुकरणीय जीवन जीना दुष्कर भले ही हो परन्तु असम्भव नहीं है। श्रीराम का चरित्र समस्त मानव जाति के लिए प्रेरणा स्रोत है और इसी के चलते रामायण का विश्व की अनेक भाषाओँ में अनुवाद हुआ है। कई अनुवादों में श्रीराम की कथा में कुछ बदलाव भी देखने को मिलता है लेकिन श्रीराम की मूल कथा इन सभी का आधार है।

महर्षि वाल्मीकि श्रीराम के समकालीन थे। देवर्षि नारद से वे पूछते हैं की इस समय संसार में सबसे गुणवान कौन है, जिसके उत्तर में देवर्षि नारद उन्हें श्रीराम के विषय में बताते हैं जो यह सिद्ध करता है कि वे श्रीराम के समकालीन थे।

जन साधारण में यह धारणा है कि महर्षि वाल्मीकि अपने पूर्व जीवन में एक डाकू थे लेकिन यह एक भ्रान्ति मात्र है। महर्षि वाल्मीकि ने सीताजी की पवित्रता की साक्षी देते हुए कहा था- हे राम ! मैं प्रचेतस मुनि का दसवाँ पुत्र हूँ। मैंने मन, वचन और कर्म से कभी पापाचरण नहीं किया है।

"प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन,
मनसा कर्मणा वाचा भुतपूर्वं न किल्बिषम्"

वे महर्षि जिनके विषय में कहा जाता है कि वे डाकू थे कोई और वाल्मीकि रहे होंगे। एक ही नाम के एक से अधिक व्यक्ति होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

राम-कथा के विषय में और भी कई धारणाएँ महर्षि वाल्मीकि की रामायण से पुष्ट नहीं होती, यथा-सीताजी का स्वयंवर, लक्ष्मण द्वारा पञ्चवती कुटी के बाहर 'लक्ष्मण रेखा' खीचना, अंगद द्वारा रावण के दरबार में पाँव जमाना आदि। सीताजी वीर्यशुल्का थीं और बहुत से राजाओं ने महाराज जनक की प्रतिज्ञा अनुसार धनुष तोड़ने का प्रयास किया लेकिन वे सफल नहीं हुए। श्रीराम ने मुनि विश्वामित्र के साथ जाकर वह धनुष तोड़ दिया और सीताजी के साथ विवाह किया। वह सीताजी के स्वयंवर का कोई आयोजन नहीं था अपितु राजा आ-आकर उस धनुष को तोड़ने का प्रयास किया करते थे। इसी प्रकार न तो लक्ष्मणजी ने पञ्चवटी में कोई रेखा खींची थी न ही अंगद ने रावण के दरबार में पाँव जमाकर रावण को कोई चुनौती दी थी। गोस्वामी तुलसीदासजी की

रामचरितमानस में यह उल्लेखित है लेकिन रामचरितमानस भक्ति ग्रन्थ है जिसे तुलसीदासजी ने भक्ति के प्रतिपादन हेतु लिखा था ।

यह पुस्तक महर्षि वाल्मीकि की रामायण को साधारण जन जन की भाषा में कविता के रूप में प्रस्तुत करने का एक प्रयास है । इस प्रस्तुति में वाल्मीकीयरामायण के उन विवरणों को छोड़ दिया गया है जो मूल कथा के प्रवाह के लिए अत्यन्त आवश्यक नहीं थे । वाल्मीकीयरामायण में छह काण्ड हैं यथा बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड और प्रत्येक काण्ड अनेक सर्गों में विभाजित है । इस अनुवाद में विषय और कविता का प्रवाह बनाए रखने के लिए अधिकतर कई सर्गों को एक साथ प्रस्तुत किया गया है ।

इस काव्य का मुख्य आधार आचार्य श्री जगदीश विद्यार्थी द्वारा अनुवादित श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम् है जिसके लिए मैं उनका हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ ।

श्रीगुरु भगवान का यह कृपाप्रसाद रूपी कार्य उनके श्रीचरणों में सादर समर्पित है ।

सादर
राजेन्द्र कुमार गुप्ता
9899666200
rkgupta51@yahoo.com
www.sufisaints.net

विषय सूची

बालकाण्डम्

ब्रह्मर्षि नारद-महर्षि वाल्मीकि संवाद 2
महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ 4
राम एवं भाइयों का जन्म 4
विश्वामित्रजी का आगमन 5
ताटका वध 6
मारीच और सुबाहु का पराभव 7
मिथिला को प्रस्थान 7
अहल्या उद्धार 8
धनुष भंग 8
परशुरामजी का मान-मर्दन 12

अयोध्याकाण्डम्

राम के राज्याभिषेक का निश्चय 16
मन्थरा-केकैयी संवाद 18
केकैयी का वर माँगना 21
राम की प्रतिज्ञा 23
राम का वनगमन 36
गुह से भेंट 38
चित्रकूट में निवास 41
श्रवणकुमार वध कथा 42
महाराज दशरथ का परलोक-गमन 43
भरत का अयोध्या आगमन 44
भरत की शपथ 46
भरत का वन को प्रस्थान 48
भरत का राम से मिलन 51
राम-भरत संवाद 52
भरत का अयोध्या लौटना 57

अरण्यकाण्डम्

विराध वध 61
राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा 62
अगस्त्य मुनि से भेंट 63
पञ्चवटी में निवास 64
शूर्पनखा का अंग-भंग 66
खर और दूषण का वध 69
शूर्पनखा द्वारा रावण को उकसाना 70
मारीच से सहायता माँगना 71
सीता अपहरण 76
जटायु एवं रावण का युद्ध 76
कबन्ध वध 80
शबरी द्वारा आतिथ्य 80

किष्किन्धाकाण्डम्

हनुमान से भेंट 84
राम का ऋष्यमूक जाना 86
सुग्रीव से भेंट 86
बाली वध 90
सुग्रीव का राज्याभिषेक 95
लक्ष्मण का क्रोध 97
वानरों का सीता की खोज में प्रस्थान 99
सम्पाति द्वारा लंका का पता बताना 103

सुन्दरकाण्डम्

हनुमान का समुद्र लाँघना 105
लंका राक्षसी का पराभव 105
हनुमान द्वारा सीता की लंका में खोज 106
अशोकवाटिका में हनुमान 107
रावण का अशोकवाटिका में आना 108
त्रिजटा का स्वप्न 111
सीता से हनुमान की भेंट 112

हनुमान द्वारा अँगूठी देना 112
सीता द्वारा चूड़ामणि देना 114
राम को सीता का संदेश 114
अशोकवाटिका विध्वंस 114
जम्बुमाली का वध 115
अक्षयकुमार का वध 115
हनुमान को रावण के समक्ष ले जाना 116
लंका दहन 118

युद्धकाण्डम्

हनुमान द्वारा लंका का वर्णन 122
राम का युद्ध के लिए प्रस्थान 123
विभीषण का निष्कासन और राम की शरण आना 126
विभीषण का राज्याभिषेक 128
समुद्र पर पुल 129
सुग्रीव और रावण की मुठभेड़ 134
वानरों और राक्षसों का युद्ध 135
राम-लक्ष्मण का शर-बन्धन 135
रावण का युद्ध के लिए आगमन 139
कुम्भकर्ण का युद्ध और वध 142
इन्द्रजित का पराक्रम 143
हनुमान द्वारा हिमालय से बूटियाँ लाना 144
लक्ष्मण और इन्द्रजित का युद्ध 148
रावण का युद्ध के लिए प्रस्थान 150
राम-रावण युद्ध 151
रावण वध 154
सीता की अग्नि-परीक्षा 157
पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौटना 158
राम का राज्याभिषेक 162

बालकाण्डम्

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

बालकाण्डम्

प्रथम: सर्ग:

तप और स्वाध्याय में निरत,
वक्ताओं में चतुर, मुनियों में श्रेष्ठ,
नारद मुनि से पूछा वाल्मीकि ने,
कौन संसार में इस समय सर्वश्रेष्ठ ?

शूरवीर, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी,
दृढ़-प्रतिज्ञ, सदाचारी, धैर्यवान,
ईर्ष्या, परनिंदा आदि से अछूता,
विकार रहित और कान्तिमान ।

सब प्राणियों का हितैषी, समर्थ,
युद्ध में जो हो काल समान,
हे महर्षे ! मैं उत्सुक जानने को,
और आपको इस सबका ज्ञान ।

प्रसन्न हो कहने लगे नारदजी,
जानना चाहते आप ऐसे व्यक्ति को,
जिसमें ये सब दुर्लभ गुण हों,
सोच-विचार मैं बताता हूँ आपको ।

इक्ष्वाकु वंश में जन्में राम,
युक्त हैं इन सभी गुणों से,
तेजस्वी, धैर्यवान और जितेन्द्रिय,
मनुष्यों में वे नर-रत्न से ।

सुडोल, सुदर्शन, बलशाली तन,
अजानुबाहु और चौड़े माथे वाले,
विशाल कन्धे, शंख सी गर्दन,
पराक्रमी, धनुष धारण करने वाले ।

सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न राम,
धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ और परोपकारी,
ज्ञाननिष्ठ, पवित्र और जितेन्द्रिय,
प्रजा के रक्षक और हितकारी ।

सब शास्त्रों के तत्त्वों के ज्ञाता,
सर्वप्रिय, सज्जन, श्रेष्ठ प्रज्ञा वाले,
लौकिक, अलौकिक क्रियाओं में कुशल,
कभी दीनता न दिखाने वाले ।

सज्जन आतुर रहते मिलें उनसे ,
वे आर्य, समदृष्टि और प्रियदर्शन,
समुद्र से गम्भीर, हिमालय से दृढ़,
कुबेर से दानी, क्षमाशील आचरण ।

द्वितीय: सर्ग:

देवाश्रम चले गए तब नारदजी,
महर्षि वाल्मीकि स्नान करने चले,
जोड़े के नर पक्षी का वध देख,
आर्त-गान निकला उनके मुख से ।

प्रेमातुर इस क्रोंच-नर पक्षी को,
हे निषाद ! जिसे मार डाला है तूने,
बहुकाल तक सुख व शान्ति को,
अपने से दूर कर लिया है तूने ।

अद्भुत श्लोक जो स्वत: निकला,
चार पाद, समान अक्षर उन सबमें,
वीणा पर भी यह गाने योग्य था,
प्रसार योग्य पाया वह श्लोक उन्होंने ।

फिर उसके अर्थ का विचार कर,
व्यथित हो गया महर्षि का मन,
तब ब्रह्माजी ने प्रकट हो कहा,
श्रीराम के चरित्र का करो वर्णन ।

पर्वत और नदियाँ रहेंगी जब तक,
तब तक राम-कथा का रहेगा प्रसार,
उस प्रथम श्लोक के जैसे श्लोकों से,
रचें रामकथा, महर्षि ने किया विचार ।

सुना नारदजी से श्रीराम का चरित्र,
और एकत्र की उनसे जुड़ी जानकारी,
दशरथजी, राष्ट्र और रानियों की,
धर्म-बल से जान ली बातें सारी ।

वनवास में जो किया श्रीराम ने,
उसका भी साक्षात्कार किया उन्होंने,
सब वृतांतों को सम्यक प्रकार जान,
श्लोकों में बद्ध किया उन्होंने ।

महर्षि वाल्मीकिजी की यह रचना,
विचित्र पदों से युक्त है जो,
श्रीराम आरूढ़ थे राज्यसिंहासन पर,
उस समय रचा गया था इसको ।

तृतीय: सर्ग:

कोसल देश था सरयू नदी के तट पर,
समृद्ध, सम्पन्न, सब तरह खुशहाल,
महाराज मनु की बसाई अयोध्या नगरी,
भलीभाँति बनी, लम्बी, चोड़ी, विशाल ।

बारह योजन लम्बाई नगरी की,
और तीन योजन चोड़ाई थी उसकी,
राजपथ और लम्बी-चोड़ी सड़कें,
रख-रखाव की पूरी व्यवस्था उनकी ।

स्वर्ग में रहते जैसे देवराज इन्द्र,
महाराज दशरथ वैसे ही रहते इसमें,
ऊँची अट्टालिकाएँ, सुन्दर, चोड़े बाज़ार,
उद्यान, खाइयाँ और किले बने इसमें ।

हाथी, घोड़े आदि पशु बहुतायत में,
सुन्दर नगरवासी रहते सुख से,
रत्नों के ढेर लगे रहते अयोध्या में,
कोई और नगरी न श्रेष्ठ इससे ।

चतुर्थ: सर्ग:

वेदार्थ के ज्ञाता, महातेजस्वी दशरथ,
प्रजा का पालन करते दक्षता से,
सब तरह संतुष्ट, निर्लोभ, सत्यवादी,
धर्मात्मा लोग अयोध्या में बसे ।

कामी, कंजूस, निर्दयी, मूर्ख, नास्तिक,
अयोध्या का कोई नगरवासी नहीं,
चरित्र में महर्षियों के समान निर्मल,
हर व्यक्ति दीर्घायु, परिवार से सुखी ।

पञ्चम: सर्ग:

इक्ष्वाकु वंशी महाराज दशरथ के,
सभी मंत्री शुभेच्छु थे उनके,
सर्वगुण सम्पन्न, विचार में निपुण,
संकेत समझने वाले थे उनके ।

आठ मन्त्रियों में सुमन्त्रजी थे एक,
वशिष्ठजी और वामदेवजी ऋत्विज उनके,
विद्या-विनय-सम्पन्न, लज्जा वाले,
सब तरह निपुण थे सहायक उनके ।

षष्ठ: सर्ग: से नवम: सर्ग:

इतने यशस्वी, तेजस्वी होने पर भी,
एक कमी थी उनके जीवन में,
कोई सन्तान नहीं थी दशरथजी की,
यह कमी उन्हें खलती थी हृदय में ।

सोचा पुत्रेष्टि यज्ञ के द्वारा,
करूँ उपाय सन्तान प्राप्ति का,
उचित प्रबन्ध करें मन्त्रियों को कह,
रानियों को भी कहा लें यज्ञ-दीक्षा ।

सुमन्त्रजी ने सुझाया दशरथजी को,
यज्ञ हेतु जाएँ ऋषि ऋष्यशृंग के पास,
आपके मित्र रोमपाद के जामाता,
अवश्य सफल होगा उनका प्रयास ।

रोमपाद ने कह उनके संग भेजा,
अपनी पुत्री और ऋषि ऋष्यशृंग को,
कृतकृत्य हुए महाराज दशरथ,
साथ ले चले उन्हें अपने महल को ।

वसन्त ऋतु आने पर हुआ यज्ञ,
ऋषि ऋष्यशृंग द्वारा वेद-मन्त्रों से,
फिर दिव्य खीर से भरे पात्र को,
कहा लेने के लिए महाराज दशरथ से ।

कहा विद्वानों द्वारा यज्ञाग्नि में,
निर्मित की गई है यह दिव्य खीर,
अवश्य आपको पुत्रों की प्राप्ति होगी,
खिलाइए रानियों को यह खीर ।

उस दिव्य खीर का आधा भाग,
दशरथजी ने कौसल्या को दिया,
सुमित्रा को आधी का आधा भाग,
और बचा भाग कैकेयी को दिया ।

फिर कुछ सोच उसका चौथाई भाग,
दशरथजी ने पुन: सुमित्रा को दे दिया,
सूर्य और अग्नि से तेजस्वी गर्भों को,
तीनों उत्तमाङ्गनाओं ने धारण किया ।

यज्ञ समाप्ति के बारहवें मास में,
छह ऋतुओं के व्यतीत होने पर,
चैत्र की नवमी पुनर्वसु नक्षत्र में,
पाँच ग्रह थे अपने उच्च स्थान पर ।

कर्क लग्न में तथा चन्द्रमा के साथ,
बृहस्पती ग्रह के उदय होने पर,
कौसल्याजी के गर्भ से श्रीराम ने,
जन्म लिया महाराज दशरथ के घर ।

पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में,
कैकेयी ने जन्म दिया भरत को,
आश्लेषा नक्षत्र और कर्क लग्न में,
सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को ।

हर्षोल्लास छा गया अयोध्या में,
अप्सराएँ नाचने, वाद्य लगे बजने,
सूत, मागध आदिको पारितोषिक,
और प्रचुर दान दिया दशरथजी ने ।

नामकरण संस्कार हुआ ग्यारहवें दिन,
कौसल्या के पुत्र को दिया राम नाम,
भरत नाम मिला कैकेयी के पुत्र को,
लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सुमित्रा पुत्रों के नाम ।

सम्पन्न हुए सब यथा समय पर,
निष्क्रमण, अन्नप्राशन आदि संस्कार,
वेदज्ञ, शूरवीर, परोपकारी और ज्ञानी,
सर्वगुण सम्पन्न थे चारों राजकुमार ।

महातेजस्वी और सत्यपराक्रमी श्रीराम,
सबके प्यारे थे निर्मल चन्द्र से,
शोभा को बढ़ाने वाले लक्ष्मणजी,
अतिप्रिय थे श्रीराम को बचपन से ।

उधर लक्ष्मणजी भी श्रीराम को,
मानते थे अपने प्राणों से भी बढ़कर,
दोनों एक-दूसरे पर प्राण छिडकते,
अतिशय प्रेम करते थे वे परस्पर ।

ऐसे ही शत्रुघ्न प्रिय थे भरत को,
शत्रुघ्न का भी भरत पर प्रेम अपार,
ज्ञान, गुण, धनुर्विद्या में प्रवीण हो,
पितृ-सेवा में तत्पर रहते चारों कुमार ।

दशम: सर्ग: से षोडश: सर्ग:

दशरथजी विराजे थे जब दरबार में,
एक दिन गाधिपुत्र विश्वामित्र वहाँ आए,
यथोचित स्वागत-सत्कार कर उनका,
पूछा उनसे क्या उनके लिए करूँ, बताएँ ?

विश्वामित्र बोले यज्ञ सिद्धि हेतु मैं,
आजकल किये हुए हूँ दीक्षा धारण,
दो राक्षस डालते हैं विघ्न यज्ञ में,
चाहता हूँ राम करें यज्ञ का रक्षण ।

मेरे द्वारा रक्षित श्रीराम कर देंगे,
राक्षसों को नष्ट अपने दिव्य तेज से,
ऐसी विधियाँ और क्रियाएँ बताउँगा मैं,
तीनों लोकों में होगी ख्याति जिससे ।

कुछ देर सन्न रह गए दशरथजी,
बोले अभी राम है पन्द्रह वर्ष का,
मैं अपनी अक्षोहिणी सेना संग चलूँगा,
और कर दूँगा वध उन सबका ।

बालक है राम, अभी अनुभव भी नहीं,
और राक्षस हैं कपट युद्ध करने वाले,
राम वियोग सह न सकूँगा क्षण भर,
मेरा यह जीवन है राम के ही सहारे ।

पूछने पर बतलाया विश्वामित्रजी ने,
मारीच और सुबाहु हैं वे राक्षस,
पुलस्त्य वंश के रावण की प्रेरणा से,
यज्ञों में विघ्न डालते हैं राक्षस ।

उनसे यह सुनकर दशरथजी बोले,
लड़ नहीं सकता मैं भी रावण से,
कृपा करें मुझ पर और बच्चों पर,
करता हूँ मैं यह विनती आप से ।

पुत्रस्नेह से कातर वचन सुन,
विश्वामित्रजी बोले क्रुद्ध होकर,
रघुवंशी होकर, प्रतिज्ञा करके भी,
क्यों नहीं स्थिर आप वचन पर ?

विपरीत है यह रघुवंशियों के लिए,
और प्रतिकूल कुल-परम्परा के,
यदि आपकी यही इच्छा है तो,
चला जाता हूँ मैं वापस लौट के ।

व्रत-परायण एवं धैर्यशील वशिष्ठजी,
बोले विश्वामित्रजी को कुपित देखकर,
हे राजन ! धर्म की साक्षात् मूर्ति आप,
रक्षा कीजिए धर्म की आगे बढ़कर ।

राम अस्त्रविद्या में कुशल हों न हों,
भेज दीजिए राम को इनके साथ,
विश्वामित्रजी से रक्षित राम का,
राक्षस कुछ न कर सकते बिगाड़ ।

विश्वामित्रजी तो स्वयं ही समर्थ हैं,
राक्षसों का कर सकते हैं विनाश,
ये तो राम को यश देना चाहते,
इसी हेतु आए हैं आपके पास ।

राम और लक्ष्मण को बुलवाकर तब,
भेजा दशरथजी ने विश्वामित्रजी के साथ,
आगे-आगे चले मुनि विश्वामित्रजी,
पीछे राम और लक्ष्मण, धनुष ले हाथ ।

मन्त्रसमूहरूप बला और अतिबला विद्याएँ,
आचमन करवा मुनि ने तब दी राम को,
बोले कोई तुम्हारे मुकाबले टिक न सकेगा,
भूख-प्यास न सताएगी, यश देंगी तुमको ।

चलते-चलते वे तीनों जन पहुँचे,
गंगा और सरयू नदी के संगम पर,
वहाँ पवित्र शिवजी का आश्रम देख,
वे रुक गए उसी आश्रम में रात भर ।

फिर नदी पार कर, दक्षिण तट पर,
जा पहुँचे वे एक भयानक वन में,
पूछने पर विश्वामित्रजी ने बतलाया,
ताटका नामक यक्षिणी रहती वन में ।

मलद और करूष नामक दो देश,
नित्य उजाड़ा करती है वह उनको,
इन्द्र सा पराक्रमी उसका पुत्र मारीच,
नित्य सताया करता है प्रजा को ।

बोले मुनि वध कर दो ताटका का,
स्त्री सोच संकोच करो न इसमें,
प्रजा का हितसाधन, कर्त्तव्य तुम्हारा,
देर न करो कर्त्तव्य पालन करने में ।

विरोचन पुत्री आतताई मन्थरा का,
इन्द्र ने वध किया था पूर्वकाल में,
ऐसे ही इन्द्र के वध की इच्छुक,
भृगु की पत्नी को मारा विष्णु ने ।

तब धनुष धर टंकार करी राम ने,
जिसे सुन उनकी ओर दौड़ी ताटका,
भयंकर, विकराल-मुखी, राक्षसी को देख,
राम ने निश्चय किया दण्ड देने का ।

कहा, मारूँगा नहीं स्त्री होने के कारण,
पर रहने न दूँगा दुष्टकर्म के लायक,
यह देख मुनि विश्वामित्रजी बोले,
यह पापिनी नहीं है दया के लायक ।

बढ़ न पावे बल इसका इसलिए,
सन्ध्या से पूर्व ही मार डालो इसे,
आज्ञा पा, राम ने छाती में बाण मार,
धराशायी कर दिया तुरन्त ही उसे ।

सप्तदश: सर्ग:

रात बिताई उन्होंने ताटका वन में ही,
सुबह प्रसन्न हो कहा विश्वामित्रजी ने,
हे राम ! मैं तुम्हें सब अस्त्र देता हूँ,
अजय हो जाओगे तुम पाकर इन्हें ।

महादिव्य दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र,
विष्णुचक्र और प्रचण्ड ऐन्द्रास्त्र भी दिया,
व्रजास्त्र, महादेवास्त्र, ब्रह्मशिर, ऐषीक,
और अतिश्रेष्ठ ब्रह्मास्त्र को भी दिया ।

मोदकी और शिखरी नामक गदाएँ,
धर्मपाश और कालपाश अस्त्र भी दिए,
वरुणपाश, पैनाक और नारायण अस्त्र,
शक्तियाँ और वायव्यास्त्र आदि भी दिए ।

विद्याधर और नन्दन नामक अस्त्र,
राक्षसों को मारने में अत्यंत उपयोगी,
तलवार, गन्धर्वास्त्र, प्रस्वापन, प्रशमन,
वर्षण और रुलाने वाले अस्त्र भी ।

कामोत्पादक दुर्धष मदनास्त्र भी दिया,
और मोहित करने वाला पैशाचास्त्र भी,
तामस और महाबली सौमन अस्त्र,
और संवर्त्त, दुर्धर्ष, मौसल आदि भी ।

साथ ही सत्यास्त्र और परमास्त्र-मायाधर,
और शत्रु का तेज हरने वाला तेजप्रभ भी,
सोमास्त्र, शिशिरास्त्र और त्वाष्ट्रास्त्र,
भगास्त्र, शीतेषु और मानव अस्त्र भी ।

फिर कहा, हे राम ! ग्रहण करो,
शीघ्र ही तुम इन सभी अस्त्रों को,
उन्हें चलाने और रोकने की विधि,
पुर्वामुख हो मुनि ने बतायी उनको ।

अष्टादश: सर्ग: एवं एकोनविंश: सर्ग:

चलते हुए पर्वत के समीप मेघ सा,
कुछ दिखने पर पूछा राम ने,
वृक्षों के झुण्ड सा जो लग रहा,
क्या हम पहुँच गए आश्रम में ?

पहले यह आश्रम महात्मा वामन का था,
यहीं पर तप सिद्ध हुआ था उनका,
सो प्रसिद्ध हुआ इसका नाम सिद्धाश्रम,
अब मैं उपभोग करता हूँ इसका ।

वध करना होगा तुम्हें दुराचारियों का,
जो यहाँ आ विघ्न डालते यज्ञ में,
आशवस्त हो मुनि ने किया यज्ञारम्भ,
और दोनों भाइ जुट गए रक्षा करने में ।

छह दिन के यज्ञ में मौन थे मुनि,
उनमें पाँच दिन तो बीते शांति से,
छठे दिन आ पहुँचे मारीच और सुबाहु,
और डालने लगे विघ्न यज्ञ में ।

रुधिर की वर्षा जो की मारीच ने,
मानवास्त्र से प्रहार किया राम ने,
फिर आग्नेयास्त्र का सन्धान कर,
उसे सुबाहु पर चलाया उन्होंने ।

मारीच तो भाग गया वहाँ से,
पर सुबाहु के निकल गए प्राण,
शेष बचे राक्षसों को भी मारकर,
'सिद्धाश्रम' का चरितार्थ किया नाम ।

विंश: सर्ग: से त्रयोविंश: सर्ग:

आश्रम को निष्कंटक कर दोनों भाइयों ने,
पूछा मुनि से और क्या सेवा करें आपकी,
विश्वामित्रजी को आगे कर महर्षि बोले,
इच्छा है मिथिला में धनुष देखने की ।

तब ऋषियों और कुमारों को साथ ले,
महर्षि विश्वामित्रजी उत्तर की ओर चले,
सोन नदी तट पहुँच गए सूर्यास्त तक,
नदी के तट पर ही सबके डेरे डले ।

अगले दिन त्रिपथगामिनी गंगा पार कर,
जा पहुँचे वे सुन्दर विशाला नगरी में,
ईक्ष्वाकु-पुत्र विशाल ने बसाई वह नगरी,
वह रात बिताई उन्होंने उसी नगरी में ।

फिर चल दिए सब मिथिलापुरी को,
दिखा मार्ग में एक निर्जन उपवन,
वह महर्षि गौतम का आश्रम था,
अहल्या के साथ तप करते थे गौतम ।

जब मुनि गौतम नही थे आश्रम में,
इन्द्र आ पहुँचा उन्हीं का रूप ले,
हालांकि अहल्या ने पहचान लिया,
पर अहल्या ने मना किया न उसे ।

जब सामने पड़ा इन्द्र गौतम के,
मुनि ने उसे अपने रूप में देखा,
जान गए वे असत कर्म इन्द्र का,
शाप दे दिया उसे नपुंसक होने का ।

अहल्या को भी शाप दिया गौतम ने,
कहा, बहुत समय तप करेगी तू,
कठोर भूमि पर करती हुई शयन,
इसी आश्रम में अकेली रहेगी तू ।

दोनों कुमारों को ले भीतर गए मुनि,
आश्रम में तप कर रही थी अहल्या,
तप-तेज से ऐसे देदीप्यमान हो रहीं,
दृष्टि कोई उससे मिला नहीं सकता ।

राम और लक्ष्मण दोनों कुमारों ने,
प्रसन्न हो पैर छुए अहल्या के,
सत्कार किया अहल्या ने उनका,
फिर मुनि संग वे मिथिलापुरी गए ।

चतुर्विंश: सर्ग: से त्रिंश सर्ग:

मिथिला में स्वागत किया जनकजी ने,
पूछा राजकुमारों के विषय में मुनि से,
बतलाया वे महाराज दशरथ के सुपुत्र हैं,
और ताटका वधादि वृतान्त कहा उनसे ।

धनुर्यज्ञ के प्रयोजन के विषय में,
जनकजी बोले, मेरी पुत्री है वीर्यशुल्का,
अनेक राजा करना चाहते थे विवाह,
पर धनुष पर चढ़ा सके न प्रत्यंचा ।

निराश हो घेर लिया मिथिला को,
पर वे सब परास्त हुए मेरे हाथों,
यदि राम चढ़ा देंगे प्रत्यंचा तो,
सीता[1] को विवाह में दे दूँगा उनको ।

धनुष राम को दिखाने को कहा मुनि ने,
तो जनकजी ने मन्त्रियों से उसे मँगवाया,
एक लौह-पेटी में रखा था वह धनुष,
राम ने आज्ञा ले धनुष को उठाया ।

फिर बिना प्रयास ही प्रत्यंचा चढ़ा,
राम ने धनुष को खीचां थोडा सा,
टूट कर दो टुकड़े हो गया धनुष,
उसके टूटने का शोर हुआ जोर का ।

जनकजी जो आशंकित थे अब तक,
धनुष टूटने से दूर हो गयी आशंका,
हाथ जोड़ सविनय मुनि से बोले,
आज्ञा हो तो मेरे मंत्री जाएँ अयोध्या ।

अयोध्या पहुँच सन्देश दिया महाराज को,
जनकजी सीता का राम से विवाह चाहते,
वीर्यशुल्का पुत्री को जीत लिया राम ने,
सो वे अपना प्रण पूरा करना चाहते ।

---

[1] सीताजी पृथ्वी से प्रकट नहीं हुई थीं बल्कि जनकजी की ही पुत्री थीं, उनकी माता का नाम योगिनी था । विवाह के अवसर पर राम की 35 और सीताजी की 22 पीढ़ियों का उल्लेख किया गया है । यदि सीता पृथ्वी से पैदा हुई होती तो कुल-परम्परा के उल्लेख करने का कोई प्रयोजन नहीं था ?

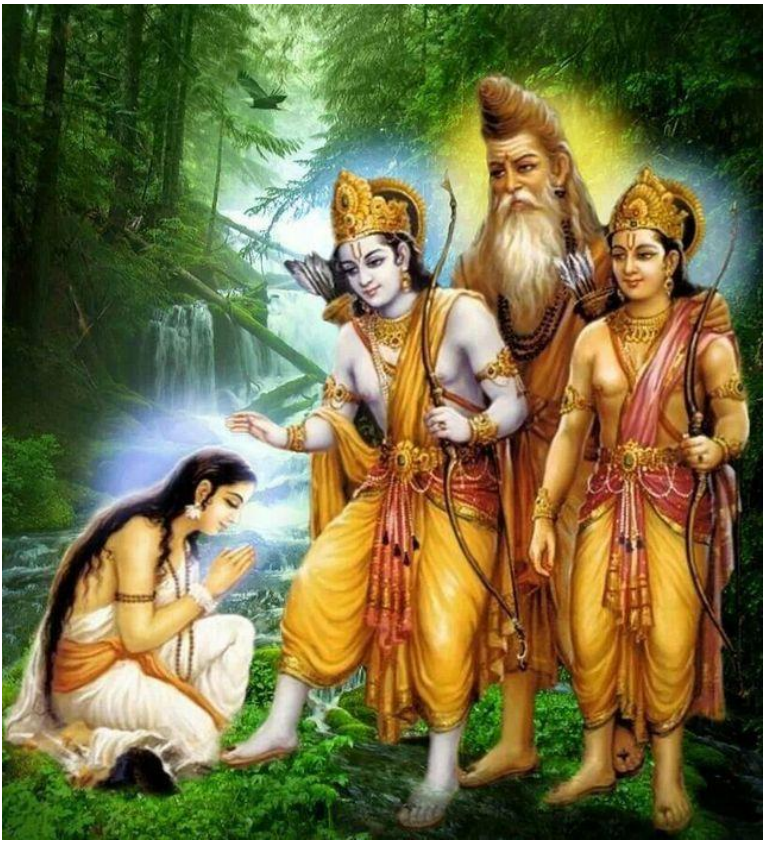

अहल्या से भेंट

प्रसन्न हो दशरथजी ने की मन्त्रणा,
गुरु वशिष्ठजी, मन्त्रियों आदि से पूछा,
सभी प्रसन्न थे यह समाचार सुन,
हर्षित था दशरथजी का दरबार समूचा ।

करी गई चतुरंगिणी सेना तैयार,
रथ और पालकी आदि उत्तम यान,
ऋषियों और ब्राह्मणों को आगे कर,
सेना सहित दशरथजी ने किया प्रस्थान ।

स्वागत किया जनकजी ने आगे बढ़,
दशरथजी और सभी आने वालों का,
प्रातःकाल यज्ञ समाप्ति पर हो विवाह,
निश्चय हुआ ये दोनों नरपतियों का ।

बुलवा भेजा जनकजी ने छोटे भाई को,
कुशध्वज, सांकाश्य देश के राजा,
मंडावी और श्रुतकीर्ति दो पुत्रियाँ उनकी,
उनके भी विवाह का साज सजा ।

दशरथजी के निवेदन पर वशिष्ठजी,
करने लगे उनके कुल का बखान,
मनु प्रथम प्रजापति के वंशज,
दशरथजी का कुल बड़ा महान ।

महाराज मनु के पुत्र थे इक्ष्वाकु,
प्रथम राजा थे वे अयोध्या के,
इक्ष्वाकु के पुत्र थे श्रीमान कुक्षि,
और विकुक्षि थे पुत्र कुक्षि के ।

विकुक्षि से बाण, बाण से अनरण्य,
फिर पृथु, त्रिशंकु, धन्धुमार क्रम से,
युवनाश्व से मान्धाता, उनसे सुसन्धि,
ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित सुसन्धि से ।

ध्रुवसन्धि के पुत्र थे यशस्वी भरत,
महातेजस्वी असित जन्में जिनसे,
हैहय, तालजंघ और शशिबिंदु तीनों,
पड़ोसी राजा शत्रु हो गए उनके ।

हारकर हिमालय चले गए असित,
मृत्यु हो गयी उनकी वहीं पर,
तब उनकी दोनों पत्नियाँ गर्भवती थीं,
एक ने दूसरी को दे दिया जहर ।

विष सहित उत्पन्न होने के कारण,
सगर नाम हुआ उससे जन्में पुत्र का
सगर से असमन्ज, उनसे दिलीप,
भगीरथ, ककुत्स्थ, फिर जन्म रघु का ।

रघु से प्रवृद्ध, प्रवृद्ध से शंखन,
सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्रग क्रम से,
मरु, प्रशुश्रुक, अम्बरीश, नहुष,
और फिर ययाति जन्में नहुष से ।

ययाति से नाभाग, नाभाग से अज,
और अज के पुत्र महाराज दशरथ,
राम और लक्ष्मण दोनों के पिता,
अयोध्या नरेश हैं महाराज दशरथ ।

बोले वशिष्ठजी, राम और लक्ष्मण हैं,
विशुद्ध, धर्मिष्ठ और सत्यवादी कुल के,
हे नरश्रेष्ठ ! माँगता हूँ आपकी पुत्रियाँ,
मैं इन दोनों राजकुमारों के लिए ।

बोले जनकजी, कन्यादान के समय,
अपने कुल का भी करना चाहिए वर्णन,
धर्मात्मा, सत्यवादी, वीरों में श्रेष्ठ,
निमी नाम के हुए हैं एक राजन ।

निमी के घर जन्म लिया मिथि ने,
आदि 'जनक' का जन्म हुआ जिनसे,
इन्हीं से हम सब कहाते हैं जनक,
उदावसु जन्में इन्हीं आदि जनक से ।

उदावसु से नन्दिवर्धन, उनसे सुकेतु,
देवरात, बृहद्रथ और महावीर क्रम से,
सुधृति, धृष्टकेतु, राजर्षि हर्यश्व,
मरु, प्रतीन्धक, फिर कीर्तिरथ उनसे ।

देवमीढ़, विबुध, महीध्रक, कीर्तिरात,
फिर कीर्तिरात के पुत्र महारोमा हुए,
महारोमा के पुत्र हुए धर्मात्मा स्वर्णरोमा,
और उनके पुत्र राजर्षि हर्षरोमा हुए ।

धर्मात्मा हर्षरोमा के हुए दो पुत्र,
बड़ा मैं और कुशध्वज छोटा मुझसे,
विवाह करें श्रीराम और लक्ष्मणजी,
सीता और उर्मिला मेरी पुत्रियों से ।

एकत्रिंश: सर्ग:

तब वशिष्ठजी का अभिप्राय जानकर,
विश्वामित्रजी बोले महाराज जनक से,
असीम महिमा वाले आप दोनों के कुल,
सो एक और बात मैं कहता हूँ आप से ।

धर्मात्मा कुशध्वज की दोनों कन्याएँ,
माँगता हूँ भरत और शत्रुघ्न के लिए,
रूप-यौवन सम्पन्न, देवों से पराक्रमी,
चारों भाई उपयुक्त वर, चारों के लिए ।

धन्य समझता हूँ मैं अपना कुल,
हाथ जोड़ जनकजी बोले ऋषियों से,
आपकी आज्ञा अनुसार चारों कन्याएँ,
विवाह करेंगी अपने-अपने वरों से ।

डेरे पर लौट आए तब दशरथजी,
अतिथियों का यथोचित सत्कार किया,
अपने चारों पुत्रों के कल्याण हेतु,
प्रचुर धन और गौओं का दान किया ।

द्वात्रिंश: सर्ग: से षट्त्रिंश: सर्ग

भरत के मामा आए वहाँ मिलने,
महाराज दशरथ ने बड़ा सम्मान किया,
फिर चले पुत्रों सहित मण्डप की ओर,
चारों का पाणिग्रहण संस्कार किया ।

हाथ में हाथ लेकर हुआ विवाह,
प्रदिक्षणा अग्नि की की गई तीन बार,
अपनी-अपनी पत्नियों को ग्रहण कर,
पत्नियों सहित जनवासे लौटे कुमार ।

बहुत सा दहेज दिया मिथिला-नरेश ने,
गौएँ, रेशमी वस्त्र, बहुमूल्य दुशाले आदि,
सजे-सजाये हाथी, घोड़े, रथ और सैनिक,
दास-दासियाँ, सोना-चाँदी और रत्नादि ।

जब सेना सहित लौट रहे थे दशरथजी,
भयंकर रूप धरे परशुराम को देखा,
जटाजूट-धारी, जमदग्नि के पुत्र,
राजाओं का मान-मर्दन जिनका प्रण था ।

दुर्धष थे वे कैलास के समान,
और दुस्सह कालाग्नि के समान,
कन्धे पर धारे हुए फरसे को,
हाथों में बिजली सा धनुष-बाण ।

लगता था ऐसा जैसे स्वयं शिवजी,
आए हुए हों त्रिपुरासुर को मारने,
वशिष्ठजी आदि ऋषि-मुनि एकत्र हो,
क्या मंशा है इनकी, लगे सोचने ।

अर्घ्य ले ऋषिगण गए उनके समीप,
और कहने लगे उनसे मधुर वचनों को,
अर्घ्य स्वीकार कर, वे श्रीराम से बोले,
मैंने सुना तुमने जो तोड़ा धनुष को ।

आश्चर्यजनक और अचिन्त्य है,
तोड़ा जाना उस विकट धनुष का,
लाया हूँ मैं जमदग्नि का धनुष,
दिखाओ बल इस पर तीर चढ़ा ।

प्रशंसा करेंगे हम तुम्हारे बल की,
इस धनुष पर तीर चढाने से,
आओ करो अपना बल प्रदर्शित,
फिर द्वंद्व-युद्ध करेंगे हम तुमसे ।

यह सुन दशरथजी कुछ उदास हो बोले,
हे परशुरामजी ! तपस्वी ब्राह्मण हैं आप,
क्षत्रियों पर आपका क्रोध शांत हो चुका,
मेरे बाल-पुत्रों को अभय-दान दें आप ।

इन्द्र के समक्ष प्रतिज्ञा कर आप,
त्याग चुके हैं अपने हथियार,
काश्यप को पृथ्वी का राज्य दे,
महेन्द्राचल को आप गए थे पधार ।

पर अवहेलना कर वे दशरथजी की,
बोले राम से चढाओ बाण धनुष पर,
कहा राम ने, सुना है आपने जो किया,
अपने पिता को मारने वालों को मारकर ।

पर आप जो समझते कि हम हैं,
वीर्य-हीन या क्षत्रिय-धर्म से दूर,
ठीक नहीं यह, मेरा पराक्रम देखिए,
आपका सारा भ्रम हो जाएगा दूर ।

क्रुद्ध हो तब खींच लिया राम ने,
वह धनुष-बाण उनके हाथ से,
प्रत्यंचा चढ़ा और तीर को खींच,
उसे छोड़ने को वे तैयार हो गए ।

कहने लगे राम उनसे क्रोधित हो,
एक तो ब्राह्मण होने से पूज्य आप,
दूसरे विश्वामित्रजी से सम्बन्ध आपका[2],
सो आप पर बाण नहीं सकता साध ।

लेकिन इस संधान किए बाण से,
या तो आपकी चाल नष्ट होगी,
या बल और तप द्वारा प्राप्त,
आपकी कीर्ति इससे नष्ट होगी ।

राम के तेज के सम्मुख जड़ से हो,
परशुरामजी धीरे-धीरे उन्हें कहने लगे,
रात्रि में मैं रुक नहीं सकता पृथ्वी पर,
काश्यप ने जब भूमि ली, कहा था मुझे ।

गुरुवचन का पालन करता हुआ,
रहता नहीं मैं रात्रि में पृथ्वी पर,
सो मेरी गति-शक्ति नष्ट न करें,
कर दें कीर्ति नष्ट बाण चलाकर ।

[2] परशुरामजी विश्वामित्रजी के बहन के पौत्र थे ।

राम और सीता का विवाह

परशुरामजी के ऐसा कहने पर,
छोड़ दिया श्रीराम ने वह उत्तम बाण,
कीर्ति नष्ट हुई, राम की प्रदिक्षणा कर,
परशुरामजी ने किया वहाँ से प्रस्थान ।

परशुरामजी लौट गए हैं यह जानकर,
बहुत प्रसन्न हुए महाराज दशरथजी,
पुनर्जन्म माना अपना और पुत्रों का,
गाजे-बाजे संग अयोध्या चले दशरथजी ।

अलंकृत हो रही सारी अयोध्या नगरी,
पुरवासी प्रफुल्लित हो स्वागत कर रहे,
रानियाँ बहुओं को महलों में ले गयीं,
पिता की सेवा करते राजकुमार रह रहे ।

कुछ समय बाद दशरथजी ने कहा,
भरत, मामा आए हुए हैं तुम्हें लिवाने,
चले भरत शत्रुघ्न सहित मामा संग,
राम राज-काज में लगे हाथ बँटाने ।

इति बालकाण्डम्

अयोध्याकाण्डम्

अयोध्याकाण्डम्

प्रथम: सर्ग: से सप्तम: सर्ग:

बहुत ऋतुएँ बीत गयीं ऐसे ही,
भरत-शत्रुघ्न रह रहे ननिहाल में,
सब तरह सत्कृत हो रहते थे पर,
रह-रह पिता याद आ जाते उन्हें ।

परदेश गए हुए राजकुमारों को,
दशरथजी भी करते रहते थे याद,
चारों राजकुमार अत्यंत प्रिय थे उन्हें,
पर श्रीराम पर था विशेष अनुराग ।

ब्रहमा सम अत्यंत गुणवान श्रीराम,
महाशक्तिशाली, दुर्गुण रहित, रूपवान,
सदा प्रसन्नचित्त और मधुर सम्भाषी,
जरा भी उपकार को बहुत लेते मान ।

अपकार का रहता जरा न स्मरण,
वे दयालु, रखते क्रोध को वश में,
धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय और पवित्र आचरण,
प्राणों से बढ़ प्रेम करती प्रजा उन्हें ।

विद्याग्राही और अपने व्रत में दृढ़,
अंगों सहित सब वेदों के ज्ञाता,
बाण-विद्या में पिता से भी बढ़कर,
सैन्य-संचालन में अत्यंत कुशलता ।

श्रीराम के लोकोत्तर गुणों को देखकर,
मन्त्रियों से परामर्श किया महाराज ने,
युवराज पद पर अभिषिक्त किया जाए,
ऐसा करने का निश्चय किया उन्होंने ।

नाना देशों के प्रधान राजाओं को,
महाराज दशरथ ने बुलवा भेजा,
पर केकैयराज और जनकजी को,
जल्दी में निमन्त्रण[3] न भेजा ।

फिर समस्त परिषद को कहा बुलाकर,
वृद्ध हो चला, अब मैं विश्राम चाहता,
मेरा विचार, राम संभालें सब राजकार्य,
अब आप मुझे अपना निर्णय दें बता ।

सब राजाओं ने प्रकट की प्रसन्नता,
वशिष्ठ आदि ने भी जताई सहमति,
दशरथजी ने तब कुरेदा राजाओं को,
मेरे पूछते ही आपने दे दी सहमति ?

क्या मैं धर्मपूर्वक राज नहीं कर रहा,
कि बनाना चाहते राम को युवराज.
यह सुनकर वे राजा आदि बोले,
अपने पुत्र के गुण सुनिए महाराज ।

---

[3] निमन्त्रण न भेजने का एक राजनितिक कारण था । केकैयी का विवाह महाराज दशरथ के साथ इस शर्त के साथ हुआ था कि उससे जो पुत्र होगा वह राज्य का उत्तराधिकारी होगा, लेकिन राम के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण कुल परम्परा अनुसार वे राज्य के अधिकारी थे । अत: इस अवसर पर यदि वे केकैयराज और जनकजी को दोनों को बुलवाते तो विवाद हो सकता था इसलिए उन्होंने दोनों को ही निमन्त्रण नहीं भेजा । युवराज अभिषिक्त होने के बाद तो उन्हें शुभ समाचार मिल ही जाता । उस समय तक किसी रानी के कोई सन्तान नहीं थी अत: संभवत: दशरथजी ने यह सोचकर शर्त स्वीकार कर ली थी ।

इन्द्र के समान हो रहे राम गुणों से,
इक्ष्वाकुवंशी राजाओं में श्रेष्ठ सबसे,
प्रजा को सुख देने में चन्द्रमा तुल्य,
और क्षमा करने में पृथ्वी से ।

धर्मज्ञ, सत्यवादी, शीलयुक्त, शांत,
ईर्ष्या रहित, सांत्वना देने वाले,
मधुरभाषी, कृतज्ञ और जितेन्द्रिय,
औरों का सुख-दुःख समझने वाले ।

अतुल्य पराक्रमी और महाधनुर्धर,
निष्पक्षता से न्याय करने वाले,
क्रोध और प्रशंसा करते न निरर्थक,
सबसे यथोचित व्यवहार करने वाले ।

यम-नियम पालन में दृढ़प्रतिज्ञ,
स्वजनों को परस्पर निकट लाने वाले,
इन सभी गुणों से अलंकृत श्रीराम,
सूर्य समान देदीप्यमान प्रभा वाले ।

इन गुणों से युक्त, लोकपालों की भाँति,
पृथ्वी चाहती उन्हें अपना राजा बनाना,
नीलकमल से श्याम शत्रुहंता श्रीराम को,
इसलिए युवराज हम चाहते हैं बनाना ।

प्रसन्न हुए दशरथजी यह सुनकर,
होने लगी तैयारी बनाने की युवराज,
सब प्रबन्ध विधिवत किए जाने लगे,
राम को बुला लाओ, बोले महाराज ।

हाथ जोड़, अपना नाम ले, प्रणाम कर,
पिता की सेवा में उपस्थित हुए श्रीराम,
दशरथजी बोले, प्रजा प्रसन्न है तुमसे,
कल युवराज पद ग्रहण करो तुम राम ।

फिर कुछ हितवचन कहे महाराज ने,
बोले तुम विनम्र हो और हो गुणवान,
फिर भी बनो और गुणी और संयमी,
प्रजा के हित का हो सर्वदा ध्यान ।

प्रसन्न रखता है जो राजा प्रजा को,
उससे प्रसन्न रहते उसके मित्र भी,
अमृतपान से ज्यों प्रसन्न होते देवता,
प्रसन्न होते हैं उस राजा से सभी ।

श्रीराम के प्रियकारी मित्रों ने जा सुनाया,
महारानी कौसल्या को यह शुभ सन्देश,
बहुत हर्षित हुईं वे यह समाचार जान,
रत्नादि उन्हें दिए जाएँ, दिया आदेश ।

अन्तःपुर लौटने के बाद महाराज ने,
फिर से बुलवा भेजा श्रीराम को,
बोले मैं बहुत दिन राज कर चुका,
शेष नहीं अब मुझे कुछ करने को ।

बाकी है बस तुम्हारा अभिषेक करना,
सो तुम करो वैसा जैसा मैं कहता हूँ,
बनाना चाहती सारी प्रजा तुम्हें राजा,
सो मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ ।

भयंकर और बहुत अशुभ स्वप्न,
दिखते हैं मुझे आजकल रात्रि में,
भीषण शब्द के साथ उल्कापात,
भारी विपत्ति का संकेत देते हैं ये ।

सो कुछ अनिष्ट होने से पहले,
तुम अपना अभिषेक करा लो,
भरोसा नहीं मनुष्य की मति का,
मेरा मन कहता है जल्दी करने को ।

आज से ही सपत्नीक नियमानुसार,
सब व्रत उपवास का पालन करना,
पत्थर की चौकी पर कुशा बिछा,
उस पर ही तुम शयन करना ।

सावधान होकर मित्र तुम्हारे,
रक्षा करें तुम्हारी चहुँ दिशा से,
क्योंकि ऐसे शुभ कार्यों में आ जाते,
विघ्न न जाने कहाँ-कहाँ से ।

जब तक भरत हैं मामा के घर,
उपयुक्त समय यह कार्य करने का,
सज्जन और आज्ञापालक है भरत,
फिर भी भरोसा क्या मन का ?

आशीर्वाद लिया राम ने माता का,
सुमित्रा और लक्ष्मण भी वहीं थे,
बोले लक्ष्मण से तुम आत्मा से मेरे,
मेरा जो कुछ है, सब तुम्हारे लिए ।

उपवास कराया उस रात वशिष्ठजी ने,
सीता और राम दोनों ने किया उपवास,
सुबह नगरवासियों ने सजा दिया नगर,
राम-राज्याभिषेक का पल आ रहा पास ।

मन्थरा नाम की एक दासी केकैयी की,
मायके से आई थी जो केकैयी के,
उसी सन्ध्या राजप्रसाद पर चढ़ देखा,
नगर सज रहा मालाओं, वन्दनवारों से ।

पता चल गया उसे राज्याभिषेक का,
ईर्ष्या और क्रोध से वो भर गई,
जाकर जगाया केकैयी को उसने,
बोली, तुझ पर भारी विपत्ति आ गई ।

भेज कर भरत को ननिहाल, दशरथ,
करना चाहता है अभिषेक राम का,
हर्षित और आश्चर्य-चकित हो केकैयी ने,
परम प्रिय संवाद सुनाया, उसे कहा ।

बहुमूल्य आभूषण उसे देकर बोलीं,
बता, और क्या दूँ मैं तुझे उपहार,
भरत और राम दोनों एक से मुझे,
महाराज ने किया यह उत्तम विचार ।

परे फेंक वह आभूषण मन्थरा बोली,
हे मूर्खे ! तू क्यों हो रही है हर्षित,
तरस आता है तेरी दुर्बुद्धि पर,
सौत की उन्नति से हो रही हर्षित ?

भरत का भी अधिकार राम सा,
इसलिए भरत से भय है राम को,
दुखी हूँ मैं यह सोचकर कि राम,
राजा बन मरवा डालेंगे भरत को ।

तुम दासी बनोगी कौसल्या की,
और भरत बनेगा दास राम का,
केकैयी ने उसे अनसुना कर दिया,
और करने लगीं राम की प्रशंसा ।

बोलीं, राम प्रिय मुझे भरत से अधिक,
कौसल्या से अधिक मेरी सेवा करता,
मानता राम भाइयों को अपने सा ही,
सो उसे राज्य मिले तो भी भरत का ।

मन्थरा का पर मिटा न सन्ताप,
भरती रही वो केकैयी के कान,
कहा, दुर्व्यवहार किया जो कौसल्या से,
क्या भूल गयी होगी वो अपमान ?

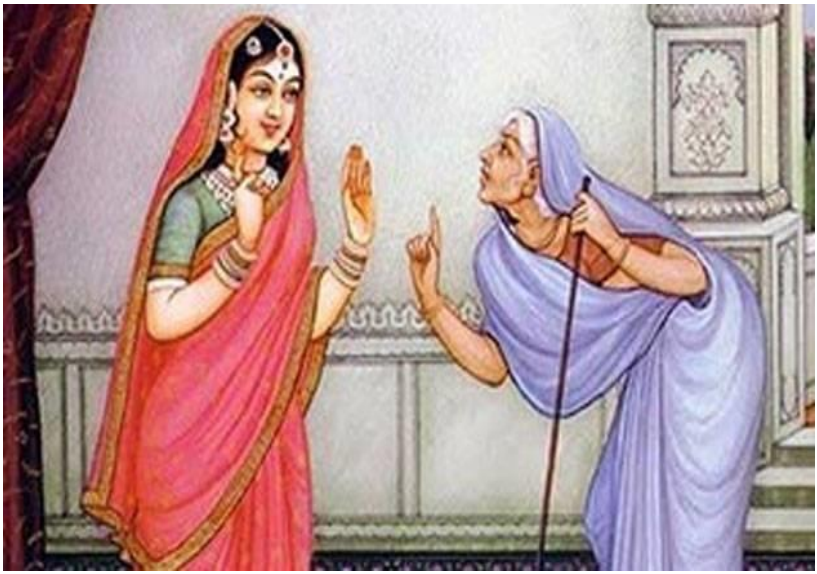

मन्थरा की केकैयी को सीख

अष्टम: सर्ग: से त्रयोदश: सर्ग:

बार-बार यूँ भड़काए जाने पर,
केकैयी का मुख लाल हो गया,
क्रोधित हो गरम श्वास छोड़ती,
केकैयी का मन बदल गया ।

बोली प्रबन्ध करती हूँ आज ही,
राम जाए वन, भरत को राज्य मिले,
हे मन्थरे ! तू ही सुझा कोई उपाय,
कि राज्याभिषेक की यह बात टले ।

याद दिलाया मन्थरा ने केकैयी को,
दशरथ द्वारा दिए वचन की बात,
देवासुर संग्राम में प्राणरक्षा करने पर,
दशरथ से हुए थे दो वर प्राप्त ।

बोली, तुम्ही ने बताया था मुझको,
वरना मुझे कहाँ पता थी यह बात,
एक वर में भरत को राज्य माँग ले,
दूसरे में राम का चौदह वर्ष वनवास ।

चौदह वर्ष राम के वन में रहने से,
प्रजाजन राम को भूलने लगेंगे,
अटल हो जाएगा राज्य भरत का,
सब लोग भरत को चाहने लगेंगे ।

फिर कहा केकैयी को मैले वस्त्र पहन,
कोपभवन में जा, भूमि पर लेट जा,
सुनना न कोई बात महाराज की,
किसी तरह से न मनाने से मानना ।

भूमि से उठा जब स्वयं महाराज,
समुद्धत हो तुझे वर देने को,
तब तू उनसे प्रतिज्ञा करवा कर,
प्रकट करना अपने मंतव्य को ।

क्या लाभ बाँध बाँधने का जब,
सारा जल बह कर निकल जाए,
सो लाभ उठा इस अवसर का तू,
इससे पहले कि बात बिगड़ जाए ।

सौभाग्य के मद से गर्वित केकैयी,
मन्थरा के बहकाए बहक गयी,
आभूषण फेंक, बुरा वेश बनाकर,
क्रूर काल के हाथों छली गयी ।

उधर महाराज अन्त:पुर में आए,
शुभ समाचार रानियों को सुनाने,
केकैयी के भवन में गए वे पहले,
पर केकैयी मिलीं न वहाँ उन्हें ।

क्रोधागार में पहुँच कर दशरथजी,
मनाने लगे बहुत अनुनय-विनय कर,
मानी न केकैयी किसी तरह भी,
सब करने को थे दशरथजी तत्पर ।

जब कुछ-कुछ आशवस्त हुई केकैयी,
पीड़ित हों महाराज, इस हेतु कहा,
न रोगग्रस्त, न कोई और बात है,
मैं चाहती हूँ आप करें मेरा कहा ।

उद्दत हों आप तो करें प्रतिज्ञा,
ताकि कह सकूँ मैं जो मेरे मन में,
दशरथजी बोले श्रीराम को छोड़,
सबसे अधिक प्रेम करता मैं तुम्हें ।

श्रीराम की शपथ खाकर दशरथजी,
बोले, करो न मुझ पर सन्देह,
सब पुण्यकर्मों की शपथ खाता हूँ,
माँग लो जिस पर भी तुम्हारा नेह ।

प्रसन्न हो महाराज की बातों से,
बोली सम्मुख खड़े यमराज के जैसे,
देवासुर संग्राम की घटना याद करो,
जब दो वर आपने दिए थे मुझे ।

रख दिया था उन वरों को मैंने,
धरोहर के रूप में आपके पास,
माँगती हूँ अब वे वर मैं आपसे,
वचन निभाएँगे आप, मुझे आस ।

राज्याभिषेक हेतु एकत्र सामान से,
राजतिलक किया जाए भरत का,
और दूसरा वर मैं यह माँगती,
राम को वनवास दें चौदह बरस का ।

चिन्तित हो मूर्छित हो गए महाराज,
देर बाद जब कुछ सचेत हुए वो,
बोले, पापिनी ! क्या बिगाड़ा है तेरा,
चल पड़ी कुल का नाश करने को ?

राम व्यवहार करते माता सा तुझसे,
फिर क्यों कर रही है तू ये अनर्थ,
सब करते श्रीराम के गुणों की प्रशंसा,
कोई दोष लगाना उस पर व्यर्थ ।

त्याग सकता हूँ रानियाँ और राज्य,
पर त्याग नहीं सकता पितृभक्त राम,
अन्न, जल बिना जीवित रह ले कोई,
पर राम बिना मेरे बच सकते न प्राण ।

छोड़ दे तू अपने इस हट को,
तेरे चरणों में मैं अपना सिर रखता,
भरत से ही प्रिय राम का तुझको,
वनवास कैसे अच्छा लग सकता ?

राम का सदव्यवहार और गुण गिनाए,
तरह-तरह से समझाया केकैयी को,
बोले, सारा संसार तुझे दे सकता हूँ,
प्रतिज्ञा-भंग से बचा ले तू मुझको ।

शोकसागर में डूबते-उतरते दशरथजी से,
क्रुद्ध हो तब केकैयी यह बोली,
कौन कहेगा तुम्हें धार्मिक जग में,
वर देना मुझे, क्या था वो ठिठोली ?

आपके ही वंश के राजा शैव्य ने,
तन का मांस दे बचाया कपोत को,
राजा अलर्क ने अपने नेत्र निकाल,
दे दिए थे अन्धे ब्राह्मण को ।

मनुष्य की तो बात ही क्या करना,
जड़ समुद्र भी नहीं त्यागता मर्यादा,
इसलिए हे राजन ! याद कर वे बातें,
असत्य मत कीजिए अपनी प्रतिज्ञा ।

हे दुर्मति राजन ! तेरी बुद्धि बिगड़ी,
सो कर रहा तू धर्म का परित्याग,
करना चाहता विहार कौसल्या संग,
देकर राम को अयोध्या का राज ।

धर्म-अधर्म, सत्य या असत्य हो,
पूरी करनी होगी प्रतिज्ञा तुम्हें,
राम को राज्य दिया प्रतिज्ञा तोड़,
तो हलाहल विष पी लूँगी मैं ।

अपनी और भरत की शपथ खा,
कहती हूँ राम को वन भेजे बिना,
किसी और बात से बनेगी न बात,
अब करो वो जो चाहते हो करना ।

“हा राम !” कह, एक दीर्घ निश्वास ले,
दशरथजी जड़ से कटे पेड़ से गिर पड़े,
बोले किसने अनर्थ को अर्थ समझाया,
किसने विनाश के ये सब जाल बुने ?

राम के समक्ष भरत कभी भी,
इस राज्य को ग्रहण न करेगा,
राम से भी बढ़कर भरत धर्मात्मा,
यह अन्याय कदापि सहन न करेगा ।

सारा संसार क्या कहेगा मुझको,
कि निपट बाल-बुद्धि है दशरथ,
कैसे इतने दिन राज्य संभाला,
कैसे ये बात मान गया दशरथ ?

क्या कहेगी उसकी माता कौसल्या,
सेवा-शुश्रूषा में जो रही तत्पर सदा,
किया न सत्कार उसका तेरे कारण,
क्या इस सबका यह दे रही बदला ?

तेरे प्रति मैंने जो किया सदव्यवहार,
पश्चाताप हो रहा मुझे वैसे ही उस पर,
जैसे कोई रोगी पश्चाताप करता है,
स्वादिष्ट किन्तु कुपथ्य भोजन कर ।

स्त्री के कहने से राम से पुत्र को,
जो वन भेज रहा वो कैसा होगा,
धिक्कारेंगे सब लोग, निन्दा करेंगे,
पर तू सुखी हो, जो होगा मेरा होगा ।

भरत को प्रिय लगे, राम का वनगमन,
तो दाहकर्म-संस्कार वो मेरा न करे,
जब मैं मर जाऊँ, राम वन चला जाए,
तब तू विधवा हो, पुत्र सहित राज करे ।

फिर बोले, स्त्रियों को धिक्कार है,
धूर्त और स्वार्थ-परायण वे होतीं,
फिर बोले, सब स्त्रियाँ तो नहीं,
केकैयी जैसी ही ऐसी होतीं ।

फिर बोले, तू चाहे जो कर ले,
विष खा या जल कर मर जा,
जीवित न रहूँगा मैं राम बिना,
किसी और बात की क्या चर्चा ?

जब मानी न किसी तरह केकैयी,
दशरथ मरणासन्न से हो गिर पड़े,
केकैयी अपनी जिद पर अड़ी रही,
दशरथजी भी बस उसे कोसते रहे ।

तीन प्रहर बीत गए रात्रि के,
दुखी महाराज करते रहे विलाप,
पर सत्य की दुहाई देते हुए,
केकैयी ने छोड़ा न अपना राग ।

कर न सके पर महाराज मुक्त,
अपने आपको उस सत्यपाश से,
ठीक वैसे जैसे कि राजा बलि,
छूट न सके थे इन्द्र-पाश से ।

सूझता नहीं कुछ विह्वल राजा को,
कठिनाई से धैर्य धारण कर बोले,
पकड़ा था जो तेरा हाथ, छोड़ता हूँ,
और भरत को भी त्यागता हूँ, बोले ।

राज्याभिषेक के लिए जो सामग्री जोड़ी,
कदाचित उससे ही मेरी अंत्येष्टि होगी,
राम ही मेरी अंत्येष्टि क्रिया करेगा,
न भरत, न तू उसमें शामिल होगी ।

रात यूँ ही बीती, सुबह हो गयी,
वशिष्ठजी आ पहुँचे अन्त:पुर में,
सुमन्त्रजी को भेजा महाराज के पास,
महाराज दिखे उन्हें विचित्र दशा में ।

आगे बढ़कर तब बोली केकैयी उनसे,
आनन्दित महाराज जागते रहे रात,
थके हुए वे इस समय सो रहे है,
जाओ, राम को ले आओ साथ ।

सुमन्त्र बोले महाराज की आज्ञा बिना,
नहीं जा सकता मैं श्रीराम को लाने,
तब दशरथजी ने आज्ञा दे कहा,
सुमन्त्र जाओ राम को लिवा लाने ।

चतुर्दश: सर्ग: से षोडश: सर्ग:

सुमन्त्र प्रसन्न थे राज्याभिषेक की सोच,
शीघ्रता से जा पहुँचे श्रीराम के महल,
अनेक लोग उपहार लेक्रर आए हुए थे,
महल में मची हुई थी चहल-पहल ।

बोले सुमन्त्रजी, महाराज ने बुलवाया,
सो शीघ्र चलिए आप मेरे साथ,
राम बोले, माता केकैयी के संग,
पिताजी कर रहे होंगे अभिषेक की बात ।

रथ पर बैठ तुरन्त चल पड़े श्रीराम,
साथ में लक्ष्मण छत्र और चँवर लिए,
वहाँ जा देखा महाराज को मलिन मुख,
महाराज 'राम !' सिवा कुछ कह न सके ।

पिता की ऐसी असम्भावित दशा देख,
मन ही मन में विचारने लगे राम,
प्रसन्न न हुए, न आशीर्वाद ही दिया,
शोक-पीड़ित और कांतिहीन हो गए राम ।

माता केकैयी का अभिवादन कर बोले,
यदि भूलवश मुझसे हुआ कुछ अपराध,
आप मेरी और से इन्हें मना लीजिए,
क्षमा कर दें महाराज, मेरे अपराध ।

एक मुहूर्त भी मैं जीना नहीं चाहता,
उन्हें असन्तुष्ट या पीड़ित कर,
धृष्टता और स्वार्थपूर्ण वचन कहे तब,
केकैयी ने राम को सम्बोधित कर ।

न तुमसे अप्रसन्न हैं, न कोई रोग,
लेकिन इनके मन में है कोई बात,
स्वीकारो उचित-अनुचित बिना विचारे,
तो मैं बतला सकती हूँ सारी बात ।

व्यथित हो राम बोले केकैयी से,
उचित नहीं है ऐसा कहना आपका,
कूद सकता हूँ मैं जलती आग में,
पान कर सकता हूँ हलाहल विष का ।

लगा सकता हूँ छलांग समुद्र में,
यदि महाराज की हो ऐसी आज्ञा,
गुरु, हितकारी, राजा और पिता,
सम्भव नहीं करूँ मैं इनकी अवज्ञा ।

महाराज दशरथ को जो भी अभीष्ट है,
पूरा करूँगा उसे मैं, करता हूँ प्रतिज्ञा,
जो कहता है वह करता है राम,
राम कोई बात करता नहीं मिथ्या ।

बोली केकैयी देवासुर-संग्राम में,
शत्रु से रक्षा की थी मैंने महाराज की,
तब उन्होंने मुझे दो वर दिए थे,
बात उन्हीं पर आज आकर है टिकी ।

पहले वर में 'भरत का राज्याभिषेक',
दूसरे में माँगा तुम्हारा आज ही वनवास,
पिता और स्वयं को सत्यप्रतिज्ञ कहाने,
अयोध्या त्याग, जा करो वन में वास ।

राज्याभिषेक हेतु एकत्र सामग्री से,
राज्याभिषेक हो जाए भरत का,
जटा और मृगचर्म धारण कर,
उपभोग करो तुम दण्डक वन का ।

इसी कारण करुणा से पूर्ण हैं महाराज,
शोक से शुष्क हो रहा मुख उनका,
देख भी नहीं सकते वे तुम्हारी ओर,
तुम ही उद्धार करो अब उनका ।

राम को शोक हुआ न जरा भी,
केकैयी के ये कठोर वचन सुनकर,
पर महाराज और व्याकुल हो गए,
कि राम वन जाएँगे जानकर ।

पूछा राम ने क्यों नहीं बोलते,
पहले की तरह मुझसे महाराज,
भरत को राज्य तुरन्त दे देता,
यदि आप ही कह देती ये बात ।

जला रहा है मेरा हृदय एक दुःख,
क्यों कहा नहीं यह महाराज ने मुझे,
राज्य ही क्या, भाई भरत के लिए,
अपने प्राणों का भी मोह नहीं मुझे ।

अति प्रसन्न हुई केकैयी यह सुनकर,
बोली ठीक नहीं अब विलम्ब करना,
लज्जावश महाराज कह रहे न स्वयं,
छोड़ो अब तुम इस पर विचार करना ।

धिक्कार तुझे ! केकैयी को यह कहते,
शोकाकुल, पलंग पर गिर पड़े महाराज,
आगे बढ़ राम ने उठाया महाराज को,
बोले, वन को प्रस्थान करूँगा मैं आज ।

पिता की आज्ञा का पालन करने से,
श्रेष्ठ नहीं कुछ और पुत्र के लिए,
महाराज कहें इसकी आवश्यकता नहीं,
आपकी आज्ञा ही बहुत, मेरे लिए ।

पिताजी से भी अधिक आप मुझे पूज्य,
पर आप नहीं समझ पायीं मेरा स्वभाव,
इतनी तुच्छ बात आप उनसे न कहतीं,
यदि जान जातीं आप मेरा स्वभाव ।

फिर बोले बस इतनी सी देर है,
मेरे जाने के लिए वन को,
माता कौसल्या से आज्ञा ले लूँ,
और समझा दूँ मैं सीता को ।

फूट-फूट कर रोने लगे महाराज,
राम ने चरण-वन्दना की दोनों की,
फिर निकले वे बाहर वहाँ से,
जरा भी धूमिल न हुई शोभा उनकी ।

कोई विकार नहीं उनके मन में,
जीवन-मुक्त महायोगेश्वर से राम,
छत्र-चँवर हटवा, मित्रों को विदा कर,
माता कौसल्या से मिलने चले राम ।

सप्तदश: सर्ग: से पञ्चविश: सर्ग:

अग्निहोत्र कर रही थीं तब कौसल्या,
पुत्र को देख दौड़ कर आई माता,
चरण-कमल छुए श्रीराम ने उनके,
आशीर्वचनों की बौछार कर रही माता ।

आसन और भोजन देने पर बोले,
कुछ नहीं जानतीं आप, हे माता !
मैं तो अब दण्डक वन जा रहा,
पिताजी ने दी मुझे ऐसी ही आज्ञा ।

भूमि पर गिर पड़ी माता कौसल्या,
मानों आकाश से कोई गिरा तारा,
बोलीं, निसन्तान होने को ग्लानि पर,
भारी यह वियोगजन्य दुःख तुम्हारा ।

कैसे बिताउँगी अपना दीन जीवन,
देखे बिना मैं मुख ये तुम्हारा,
लगता मेरा हृदय बड़ा कठोर है,
मृत्यु का भी मुझे न सहारा ।

विलाप करती हुई माता को देखकर,
समयोचित ये वचन बोले लक्ष्मण,
कोई दोष या अपराध नहीं राम का,
वनवास मिला उन्हें जिसके कारण ।

कौन स्वीकार कर सकता यह निर्णय,
लगता, दिया गया जो बाल-बुद्धि से,
क्यों न अपने अधीन कर लें राज्य,
लोगों में यह बात फैलने से पहले ।

साक्षात् मृत्यु के समान जब मैं,
धनुष हाथ ले रक्षा करूँगा राम की,
कौन आँख उठाकर देख सकेगा,
नर हीन कर दूँगा मैं सारी नगरी ।

मार डालूँगा मैं उन सभी को,
लेना चाहते जो पक्ष भरत का,
पिता भी जो उकसावे में आएँ,
तो उचित वध भी करना उनका ।

अभिमान में आकर यदि गुरु भी,
भूल जाए अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य को,
और चलने लगे यदि उलटे मार्ग पर,
तो दण्ड का अधिकारी हो जाता वो ।

सब तरह से शपथ खा कहता हूँ,
हर प्रकार से मैं अनुरागी राम का,
जलती हुई अग्नि हो या वन में,
राम से पहले मुझे पाएँगी वहाँ ।

लक्ष्मण की बात सुन कौसल्या बोलीं,
हे राम ! तुमने सुन ली है सब बात,
अब तुझे जो उचित जान पड़े सो कर,
मेरी आज्ञा नहीं वनगमन की, हे तात !

कोई सुख नहीं मुझे तुझसे बिछुड़कर,
न ही अभिलाषा मुझे फिर जीने की,
तिनके खाकर भी तेरा साथ प्रिय मुझे,
तेरे वियोग में मैं अपने प्राण दे दूँगी ।

माता को विह्वल देख, बोले राम,
पिता की अवज्ञा मैं कर नहीं सकता,
तुझे प्रणाम कर और प्रसन्न कर,
हे माता ! मैं दण्डकवन जाना चाहता ।

फिर लक्ष्मण को सम्बोधित कर बोले,
जानता हूँ पराक्रम और बल मैं तुम्हारा,
माता तो कातर हो रही है शोक में,
पर तुम क्यों कर रहे धर्म से किनारा ।

धर्म ही परम पुरुषार्थ लोक में,
और धर्म में ही है सत्य प्रतिष्ठित,
धर्मानुमोदित होने से पितृआज्ञा,
माता की आज्ञा से अधिक उचित ।

माता, पिता या ब्राह्मण की आज्ञा से,
हटना नहीं चाहिए पीछे, प्रतिज्ञा कर,
पिताजी की आज्ञा ही सुनाई केकैयी ने,
उनकी आज्ञा है मेरे सिर-माथे पर ।

छोड़ क्षात्रधर्म की अनुगामी बुद्धि,
और उग्रता छोड़, ले आश्रय धर्म का,
अपने मन को शांत कर, हे लक्ष्मण !
और अनुगमन कर मेरी बुद्धि का ।

फिर माँ से कहा, शोकातुर पिता को,
हे माँ ! शांत कर उन्हें समझा-बुझा,
हम सब रहें पिताजी की आज्ञा में,
यही सत्य सार है शिष्टाचार का ।

फिर राम से अलग रहने में असमर्थ,
क्रोधित लक्ष्मण को बुलाकर कहा,
क्रोध, शोक त्याग, करो धैर्य धारण,
भाग्य ही है कारण इस सबका ।

बस नहीं इस पर किसी का कुछ,
प्रतिकूल भाग्य ही है इसका कारण,
ऐसा न होता तो केकैयी की बुद्धि,
क्यों पलट जाती, बिना किसी कारण ?

कौन लड़ सकता भला दैव से,
उसका प्रत्यक्ष कर्मफल भोग से होता,
हानि-लाभ, जीवन-मरण और सुख-दुःख,
ये सब अपने भाग्य से होता ।

अकस्मात सब उलट-पलट हो जाता,
लगता कुछ होगा, कुछ और हो जाता,
सन्ताप न करो राज्य न मिलने का,
वनवास को मैं अधिक श्रेयस्कर मानता ।

पौरुषहीन और कायर पुरुष ही करते,
भाग्य का अनुवर्तन, लक्ष्मणजी बोले,
पुरुषार्थ से जो दबा सकता दैव को,
क्या कर सकता दैव उसका, वे बोले ?

हो जाएगा आज निर्णय इस बात का,
भाग्य और पुरुषार्थ में कौन बलवान,
ये मेरी भुजाएँ और अस्त्र-शस्त्र मेरे,
दिखाने को नहीं, सब जाएँगे जान ।

बताएँ आपके किस शत्रु को मारूँ,
जिससे पृथ्वी का राज्य मिले आपको,
मैं आपका दास हूँ, आपकी आज्ञा में,
किस तरह प्रसन्न मैं करूँ आपको ?

कौसल्याजी ने देखा राम उद्दत हैं,
पिता की आज्ञा मान, वन जाने को,
सोचने लगीं जिसने दुःख न देखा,
कैसे उच्छ्वृति[4] से निर्वाह करेगा वो ?

जिसके नौकर-चाकर भी खाते मिष्टान्न,
वो कैसे कन्द-मूल फल खाकर रहेगा,
निश्चय ही लोक में भाग्य ही बलवान,
सबका प्रिय, प्रशंसित, वन में जा रहेगा ।

[4] खेत कट जाने के बाद जो दाने पड़े रह जाते हैं, उनसे जीवन निर्वाह उच्छ्वृति कहलाती है ।

फिर बोलीं, जला देगी मुझे शोकाग्नि,
जहाँ जाएगा, मैं भी पीछे-पीछे चलूँगी,
क्या गाय बछड़े के पीछे नहीं जाती,
मैं भी वैसे ही तेरे संग वन को चलूँगी ।

केकैयी ने दिया महाराज को धोखा,
और आप भी यदि त्याग देंगी उन्हें,
बोले राम, मैं भी वन जा रहा हूँ,
फिर कौन सान्त्वना देगा उन्हें ?

कर देना अपने पति का परित्याग,
स्त्री के लिए ये सबसे बड़ी क्रूरता,
जब तक जीवित मेरे पिता महाराज,
उनकी सेवा करें आप, विनती करता ।

अवश्य माननी चाहिए मुझे और आपको,
आज्ञा उनकी, मेरे पिता, आपके पति,
श्रेष्ठ हैं वे, सबके स्वामी और पूज्य,
हमारे लिए आवश्यक अनुमति उनकी ।

कुछ कह न सकीं माता कौसल्या,
बोलीं, तुझे रोक लूँ, शक्ति न मुझमें,
सचमुच काल बहुत बलवान है,
तेरे लौटने पर ही सुख पाऊँगी मैं ।

जिस धर्म का तुम कर रहे पालन,
वही करे तुम्हारी सब ओर से रक्षा,
स्वास्ति वचन बोल, प्रदिक्षणा कर,
बहुत देर हृदय से लगा के रक्खा ।

बार-बार माता के चरण छू,
राम गए फिर सीता के घर,
कर रही थीं वे उनकी प्रतीक्षा,
सुनी न थी वनगमन की खबर ।

व्याकुल मुख श्रीराम को देख,
सीताजी स्वयं विचलित हो उठीं,
राम भी उनसे कुछ छिपा न सके,
मुख पर प्रकटी वेदना हृदय की ।

पूछने पर बताई वनवास की बात,
कहा, चौदह वर्ष अब मैं रहूँगा वन में,
वन के लिए प्रस्थान करने से पहले,
आया हूँ, हे सीता ! मैं तुमसे मिलने ।

सुनना नहीं चाहते औरों की स्तुति,
एश्वर्य जिन लोगों के कदम चूमता,,
सो हे सीता ! तुम कभी न करना,
भाई भरत के सामने मेरी प्रशंसा ।

मेरे वन चले जाने के पश्चात,
संयमित हो तुम्हारा रहना-सहना,
सेवा करना मेरे वृद्ध पिता की,
और ध्यान सब माताओं का रखना ।

प्राणों से प्रिय हैं मुझे भरत शत्रुघ्न,
देखना उन्हें भाई और पुत्र समान,
राजा और कुल के स्वामी भरत,
उनके मान का तुम रखना ध्यान ।

मैं तो जाता हूँ अब वन को,
पर तुम्हें तो यहीं रहना होगा,
मेरी तुम्हारे लिए यही शिक्षा हँ,
सदाचरण ही तुम्हारा आश्रय होगा ।

स्नेहवश क्रुद्ध हो बोलीं सीता,
कैसी हल्की बात कर रहे हैं आप,
सब भोगते अपने पाप-पुण्य का फल,
पत्नी ही भोगती पति का भाग ।

आपके वन जाने के आदेश संग,
मिल गई मुझे भी वन की आज्ञा,
कोई और साथ होता न स्त्रियों के,
एक पति ही उनका सर्वस्व सर्वदा ।

आप करेंगे वन को गमन तो मैं,
काँटों को रौंदती हुई चलूँगी आगे,
पालन करती हुई ब्रह्मचर्य का मैं,
रखूँगी आपके सुख-दुःख सिर-माथे ।

चाहे सैकड़ों-सहस्त्रों वर्ष बीत जाएँ,
आभास न होगा उनका आपके साथ,
स्वर्ग-सुख भी मेरे लिए कुछ नहीं,
सबसे बढ़कर मुझे आपका साथ ।

वन साथ चलने से रोकने के लिए,
वन की दुर्गमता बताने लगे श्रीराम,
सिंहों की दहाड़, कीचड़ वाली नदियाँ,
झरनों का शोर, संकट में सदा प्राण ।

पैरों में लिपट जाने वाली बेलें,
मार्ग में पाँव में चुभने वाले काँटें,
सोने के लिए बस पत्तों की शय्या,
खाने को भी कुछ मिले न मिले ।

आँधियाँ चलती, अन्धकार छाया रहता,
घुमते रहते विशालकाय अजगर वन में,
कीट-पतंग, मच्छर आदि सताया करते,
बहुत ही कष्टदायक होता रहना वन में ।

लगाना पड़ता है मन तप में,
डर का त्याग, निर्भय हो रहना,
तुम्हारे रहने योग्य नहीं वह स्थान,
कष्ट ही कष्ट वहाँ पड़ता सहना ।

दुखी सीता तब रोते हुए बोलीं,
गिनवाए जो वन के दोष आपने,
आपके स्नेह के समक्ष वे गुण से,
जो आप साथ ले चलें मुझे वन में ।

फिर ये दुःख होते हैं उन्हीं को,
किया नहीं जिन्होंने मन को वश में,
पहले भी चाहा था मैंने वन-भ्रमण,
अब आप साथ ले चलें मुझे वन में ।

मुझ दुखिया को जो न ले जाते साथ,
तो क्या वश मेरा, त्याग दूँगी प्राण,
विष खा लूँगी या जल जाऊँगी आग में,
मुझे अपने साथ ले चलें, हे श्रीराम !

फिर प्रणय और कुछ रोष से सीता,
कहने लगीं, करते हुए राम का उपहास,
नाम मात्र का पुरुष यदि जानते आपको,
पिता मेरा विवाह न करते आपके साथ ।

सूर्य के समान तेजस्वी आपको,
अज्ञानवश ही कहते हैं लोग,
किस बात का भय आपको है,
जो वन जारहे, मुझे यहीं छोड़ ?

तप, वनवास या कुछ भी करो तुम,
उचित मुझे तुम्हारे साथ ही रहना,
कुश और काँटें मुझे रुई से लगेंगे,
धूल चन्दन सी, पत्ते मलमली बिछौना ।

जो भी अल्प पत्र, पुष्प आप लाएँगे,
अमृत रस के समान होंगे वे मुझे,
माता-पिता और महल आएँगे न याद,
कोई कष्ट आपको देते देखेंगे न मुझे ।

स्वर्ग के समान सुख है मुझे,
आपके साथ रहते हुए सर्वत्र,
और यदि आपका साथ न हो,
मेरे लिए फिर नरक है सर्वत्र ।

यदि आप फिर भी साथ न ले गए,
तो आपके सामने ही दे दूँगी प्राण,
किसी तरह उनके वश में न रहूँगी,
विघ्न का जिन्होंने जुटाया सामान ।

आपके वनगमन के पश्चात भी,
मरना ही तो है जो मुझे दुःख से,
तो फिर अच्छा है अभी मर जाऊँ,
क्या लाभ परित्यक्त हो जीने से ?

एक क्षण का भी वियोग सह्य नहीं,
चौदह वर्ष की तो बात ही क्या,
यह कह सीता शोक-विकल हो गयी,
आँखों से बही अश्रुओं की नदिया ।

तुम्हारे दुःख के सामने, हे सीता !
स्वर्ग भी मुझे लगता नहीं अच्छा,
बोले राम, कोई भय नहीं है मुझे,
सब भाँति तुम्हारी रक्षा कर सकता ।

ज्ञात नहीं था तुम्हारे मन का अभिप्राय,
इसलिए कहा न चलो तुम वन को,
पहल के लोगों सा धर्माचरण करूँगा,
उचित है मेरा अनुसरण करना तुमको ।

सत्य के पाश से बंधा, पितृआज्ञा से,
जा रहा हूँ मैं दण्डकवन को,
माता-पिता की आज्ञा का पालन,
सब तरह से उचित होता पुत्र को ।

माता-पिता और आचार्य की आराधना,
कुछ और पवित्र न इससे बढ़कर,
तीनों लोकों की आराधना हो जाती,
सेवा से इनकी, जी-जान से बढ़कर ।

धन-धान्य, विद्या, पुत्र, स्वर्गादि,
कुछ भी दुर्लभ नहीं उस नर को,
माता-पिता की जो सेवा करता,
और निभा लाता उनकी आज्ञा को ।

तुम्हारा अभिप्राय नहीं जाना था पहले,
अब चलो मेरे साथ तुम वन को,
मेरे और तुम्हारे कुल के अनुरूप है,
करो तैयारी चलने की वन को ।

इस समय मुझे तुम्हारे बिना,
स्वर्ग भी नहीं लगता अच्छा,
दे दो ब्राह्मणों को उत्तम पदार्थ,
और भिक्षुओं को दे दो भिक्षा ।

षड्विंश: सर्ग: एवं सप्तविंश सर्ग:

लक्ष्मण वहाँ पहले ही आ चुके थे,
सुन रहे थे संवाद उन दोनों का,
उनके चरणों में सिर नवा वे बोले,
साथ चलने की मुझे दें आज्ञा ।

नहीं चाहता आपके सिवा कुछ,
न अमरत्व, न कामना स्वर्ग की,
आपके साथ वन में चलकर,
करूँगा सेवा मैं आप दोनों की ।

अनेक तरह से रोकना चाहा राम ने,
समझाया न चलें वो वन को,
किसी तरह न मानें लक्ष्मण, बोले,
पहले ही स्वीकृति[5] दे दी आपने तो ।

हाथ जोड़े, वनगमन को उद्दत देख,
लक्ष्मण से तब कहने लगे श्रीराम,
धर्म में रत, सन्मार्ग के पथिक,
तुम मुझे प्रिय हो प्राणों के समान ।

लेकिन तुम मेरे साथ चले तो,
फिर कौन करेगा माताओं की सेवा,
करना चाहिए तुम्हें मेरे कहे अनुसार,
भक्ति सिद्ध होगी, यश भी मिलेगा ।

कौसल्या और सुमित्रा की सेवा,
भरतजी करेंगे, आपके प्रताप से,
यदि नहीं करेंगे वे माताओं की सेवा,
तो मार डालूँगा मैं नीच को ऐसे ।

जिसके नौकर-चाकर स्वयं समृद्ध हैं,
धनी और सहस्त्रों ग्रामों के स्वामी,
उन माता कौसल्या की चिंता व्यर्थ है,
कितनों का ही भरण-पोषण कर सकती ।

बनाइये आप मुझे अपना अनुचर,
इसमें न कैसा भी अधर्म होगा,
मैं कृतार्थ हो जाऊँगा ऐसा करने से,
और आप का भी कार्य सिद्ध होगा ।

आपके आगे-आगे चलूँगा मैं,
धनुष-बाण हाथ में ले मार्ग दिखाता,
सेवा-चाकरी करूँगा मैं आपकी,
पूरी करूँगा आपकी सब आवश्यकता ।

सुनकर लक्ष्मण की ये सब बातें,
श्रीराम ने अनुमति दे दी उन्हें,
वनगमन की आज्ञा ले आओ,
माता और सुहृज्ज्नों से, कहा उन्हें ।

वितरित कर दिया अपना धन राम ने,
ब्राह्मणों, वृद्धों और दीन-दुखियों में,
प्रेरित किया त्रिजट नामक ब्राह्मण को,
राम के पास जाए वो, उसकी पत्नी ने ।

उच्छ्वृति से निर्वाह करता था त्रिजट,
छोटे-छोटे बच्चे और बहुत निर्धन था वो,
कहा राम के पास जाकर त्रिजट ने,
उनकी दया-दृष्टि का आकांक्षी है वो ।

बोले राम परिहास-पूर्वक त्रिजट से,
असंख्य गायें बची हैं अभी मेरे पास,
डण्डा फेंक जितनी जगह घेर सकोगे,
उसमें जितनी गायें आएँ, करोगे प्राप्त ।

पूरी शक्ति लगा डण्डा फेंका त्रिजट ने,
जाकर गिरा वह डण्डा सरयू के पार,
सरयू किनारे तक उन सब गौओं को,
त्रिजट को दे, राम ने किया सत्कार ।

---

[5] ऊपर पहले एक पद में श्रीराम ने केवल भरत-शत्रुघ्न का नाम लिया है-'प्राणों से प्रिय हैं मुझे भरत शत्रुघ्न ..., उनके मान का तुम रखना ध्यान', जिससे लक्ष्मणजी ने यह आशय निकाल लिया ।

अष्टाविंश: सर्ग: से चत्वारिंश: सर्ग:

चले राम, सीता, लक्ष्मण को साथ ले,
पैदल ही दशरथ महाराज से मिलने,
करने लगे लोग भाँति-भाँति की बातें,
और लगे लोग गुण राम के गिनने ।

श्रीराम को देख दौड़ पड़े दशरथजी,
पर गिर पड़े मूर्छित हो भूमि पर,
जब कुछ सचेत हुए महाराज तो,
आज्ञा दें, बोले राम हाथ जोडकर ।

फिर बोले सीता और लक्ष्मण भी,
जाना चाहते मेरे साथ ये वन में,
रोका बहुत मैंने पर ये रुकते नहीं,
अब आप भी आज्ञा दे दें हमें ।

कृपापूर्ण दृष्टि से देख बोले दशरथजी,
मुझे धोखा दिया केकैयी ने वर माँग,
बलपूर्वक बन्दी बनाकर मुझे तुम,
करो इस अयोध्या नगरी पर राज ।

तब हाथ जोड़ पिता से बोले राम,
अनेक वर्ष करें आप पृथ्वी का पालन,
मिथ्यावादी आपको बनाना नहीं चाहता,
अवश्य ही करूँगा मैं वन को गमन ।

निवास कर चौदह वर्ष मैं वन में,
और अपनी प्रतिज्ञा को कर पूरी,
आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा,
अब आज्ञा दें हमें वनगमन की ।

बंधे हुए सत्यरूपी पाश में महाराज,
और केकैयी के वर-बाण से आहत,
दुखी हो रोते हुए बोले प्रिय राम से,
रुक जाओ केवल आज रात्रि तक ।

कर रहे हो तुम यह दुष्कर कार्य,
सबको छोड़ वन जा रहे हो तुम,
फँस गया हूँ मैं केकैयी की चाल में,
पर चाहता नहीं कि वन जाओ तुम ।

केकैयी की बातों में आकर तुम,
करना चाहते हो प्रतिज्ञा पूरी,
मेरे ज्येष्ठ पुत्र, कोई आश्चर्य नहीं,
ठहराना चाहते मुझे सत्यवादी ।

बोले राम, माता केकैयी ने कहा,
आज ही मुझे दण्डकवन जाने को,
जो पुण्यफल मिलेगा आज जाने से,
नहीं मिलेगा कल जाने से वो ।

न राज्य, न सुख, न ही सीता,
न ही मैं इच्छा रखता हूँ स्वर्ग की,
आप मेरे पिता, देवता-स्वरूप हैं,
देखना चाहता मैं आपको सत्यवादी ।

आज रात्रि की तो बात ही क्या,
रुकना नहीं चाहता मैं एक पल भी,
पिता देवताओं का भी देवता होता,
पालन करूँगा मैं आज्ञा आपकी ।

राज्य दे दीजिए आप भरत को,
चिरकाल के लिए वन जाऊँगा मैं,
मूर्छित हो महाराज नीचे गिर गए,
हाहाकार मच गया महल में ।

सुमन्त्र भी हो गए थे मूर्छित,
सचेत होने पर कहने लगे केकैयी से,
मत कर अपने पति का तिरस्कार,
स्त्री के लिए कौन बढ़कर पति से ?

इक्ष्वाकु कुल में पिता के बाद,
ज्येष्ठ पुत्र ही होता राज्य का स्वामी,
क्यों महाराज के जीते-जी ही तुम,
बदलना चाहती हो यह परिपाटी ?

अच्छी बात है, भरत ही राजा हो,
पर हम तो जाएँगे राम के साथ,
बहुत आश्चर्य हो रहा है मुझे,
पृथ्वी फट क्यों न हुई दो-भाग ?

कौन कुल्हाड़ी से काटता आम,
और सींचता भला कड़ुए नीम को,
जो दूध से सींचने पर भी,
क्या कभी देता मीठे फलों को ?

ठीक ही है यह लोकोक्ति,
नीम से कभी मधु नहीं चूता,
यही कारण है तू वैसी ही निकली,
जैसी थी, हे ककैयी ! तेरी माता ।

मुझे तो लगता ठीक कहते हैं लोग,
पुत्र और पुत्री के स्वभाव के बारे में,
पुत्र पाता है स्वभाव पिता का,
माँ का स्वभाव झलकता पुत्री में ।

मत बन तू अपनी माता की जैसी,
और मान जा कहना महाराज का,
मत करवा यह निन्दित कर्म उनसे,
उनकी इच्छा मान, कर उनकी रक्षा ।

महाराज दशरथ को छोड़ यदि,
चले जाते हैं श्रीराम जो वन को,
हे ककैयी ! तू सोच जरा सा,
संसार में अपयश मिलेगा न तुझको ?

केकैयी न तो क्षुब्ध हुई जरा भी,
न कोई पश्चाताप हुआ उसको,
तब अपनी प्रतिज्ञा से दुखी महाराज,
गरम आहें भरते, बोले सुमन्त्र को ।

श्रीराम के साथ जाने के लिए,
करो तैयार चतुरंगिणी सेना को,
अन्न और धन के मेरे निजी भंडार,
वे सब भी तुम उनके संग भेजो ।

यह सुन सूख गया केकैयी का मुख,
बोली, सूने राज्य का भरत क्या करेगा,
बिना राज्य-भोगों के राम को भेजो,
जैसा पूर्वज असमन्ज के साथ हुआ था ।

लज्जित हो गए लोग यह सुन,
पर केकैयी को कोई पड़ा न फर्क,
असमन्ज तो बड़ा दुष्ट बुद्धि था,
स्वार्थवश केकैयी कर रही कुतर्क ।

प्रसन्न होता था दुष्ट असमन्ज,
निर्दोष बालकों को सरयू में फेंक,
पर कोई पाप किया न राम ने,
सबसे प्रशंसित, आचरण में श्रेष्ठ ।

दशरथजी बोले, सब कुछ छोड़ यहीं,
मैं भी जाऊँगा वन राम के साथ,
सुखपूर्वक राज्य का कर उपभोग,
फिर तू अपने पुत्र भरत के साथ ।

पिता के वचन सुन कहा राम ने,
राज-भोग छोड़ स्वीकारा मैंने वनवास,
निर्वाह करूँगा वन के कन्द-मूलों से,
सेना आदि साथ भेजने से क्या लाभ ?

रखना चाहे हाथी बाँधने की रस्सी,
हाथी दान करके जो अपने पास,
उस उत्तम हाथी देने वाले की,
रस्सी पर ममता से क्या लाभ ?

मुझे तो मँगवा दीजिए वल्कल वस्त्र,
और वन में काम आने वाले औजार,
तुरन्त केकैयी स्वयं वस्त्रादि ले आई,
जैसे इसी क्षण के लिए थी तैयार ।

पहन लिए वे वस्त्र राम-लक्ष्मण ने,
पर सीता न जानती कैसे पहने उन्हें,
आगे बढ़ राम ने रेशमी वस्त्रों पर ही,
वे वल्कल वस्त्र पहना दिए उन्हें ।

यह देख गुरु वशिष्ठजी कहने लगे,
देवी सीता नहीं जाएँगी वन को,
यदि सीता राम के संग वन गई,
तो पूरी अयोध्या जाएगी वन को ।

भरत और शत्रुघ्न भी चीर पहन,
हो जाएँगे वनवासी, राम के साथ,
सूनी हो जाएगी मनुष्यों से यह भूमि,
बस वृक्षों पर कर लेना तुम राज ।

अप्रसन्नतापूर्वक प्रदत्त इस राज्य को,
कभी भी स्वीकार करेगा न भरत,
यदि वह पुत्र होगा महाराज का,
पुत्रवत् तेरे साथ कभी न रहेगा भरत ।

तू जो सोच भरत की भलाई,
दिला रही है यह राज्य उसे,
कर रही है तू अप्रिय उसका,
क्योंकि राम अति प्रिय हैं उसे ।

मनुष्यों की तो बात ही क्या,
पशु-पक्षी भी जाएँगे उनके साथ,
स्नेह से आसक्त हो वृक्षादि भी,
कर लेंगे राम की ओर झुकाव ।

हे देवी ! चीर हटा, अपनी वधु को,
उत्तम वस्त्र और आभूषण दो तुम,
राम के लिए ही माँगा था वनवास,
अलंकृत कर सीता को भेजो तुम ।

पर सीता ने उतारे ना वल्कल,
किए रहीं उन वस्त्रों को धारण,
भला सीता ऐसा क्यों नहीं करती,
पति राम का कर रहीं अनुसरण ।

दशरथ बोले कुश-चीर धारण कर,
जाएगी नहीं सीता वन को,
माना कि राम ने तेरा किया अहित,
पर सीता ने क्या कहा तुझको ?

वन जाने को उद्दत राम ने कहा,
माता कौसल्या डूब जाएँगी दुःख में,
आप पूज्य हैं, इनका मान करना,
कभी कोई दुःख देखा न इन्होने ।

मुनि वेश में देख राम, सीता को,
शोकग्रस्त महाराज हो गए अचेत,
विलाप करने लगे कुछ सचेत हो,
कोसने लगे अपने भाग्य के लेख ।

फिर सुमन्त्र से बोले महाराज,
रथ में बैठा ले जाओ राम को,
छोड़ आओ उन्हें नगर से बाहर,
प्रचुर आभूषण आदि दो सीता को ।

धारण किए आभूषणादि सीता ने,
कौसल्या ने हृदय लगा समझाया,
जो स्त्री सम्मान करती न पति का,
कुलटा उन्हें कहा जाता है, बताया ।

सुख भोग जब पति सम्पन्न हो,
दोष लगातीं विपन्न अवस्था में,
असत्य वचन और विकृत विचार,
ये लक्षण पाए जाते हैं उनमें ।

मन में क्या उनके जाना नहीं जाता,
नवयौवना समझती सदा अपने को,
पापपूर्ण होते हैं उनके संकल्प,
क्षण में त्याग देतीं हैं पति को ।

प्रशस्त कुल, विद्या, दान, उपकार,
वश में कुछ, इनके मन को न करता,
चंचल हृदय और अस्थिर मति,
ऐसे लक्षणों वाली होती हैं कुलटा ।

सत्य में आस्था, कुलोचित आचरण,
और शान्तचित्त होतीं सती-साध्वी,
पति ही उनका होता है सर्वस्व,
पति के विपरीत कभी होती न मति ।

वनवास को उद्दत मेरे पुत्र राम का,
हे सीता ! करना न कभी भी अपमान,
चाहे धनी हो या निर्धन हो पति,
स्त्री के लिए पति पूज्य देवता समान ।

हाथ जोड़ सीता बोली, हे आर्ये,
आचरण करूँगी मैं आपने कहा जैसा,
सुन चुकी हूँ मैं अपने माता-पिता से,
पति के साथ व्यवहार हो कैसा ?

चाँद से चाँदनी ज्यों अलग न होती,
विचलित न हूँगी मैं कभी धर्म से,
चाहे कोई स्त्री हो सौ पुत्रों वाली,
सुख नहीं पाती वो बिना पति के ।

माता, पिता और पुत्र, ये सब,
देने वाले हैं सिमित सुख के,
कौन करेगी न पति का आदर,
जो देने वाले अमित सुख के ?

धर्म के मर्म को जानने वालों से,
जाना मैंने रहस्य पातिव्रत्य का,
कैसे अनादर कर सकती फिर मैं,
स्त्री के सबसे बड़े देवता, पति का ?

आँसू गिरा रही थीं जो अब तक,
राम के वनगमन से दुखी हो,
कौसल्या माता हर्षित हो गयीं,
सुन इन हृदयस्पर्शी मर्मवचनों को ।

परिक्रमा कर तब माता कौसल्या की,
हाथ जोड़कर उन्हें, कहने लगे श्रीराम,
ये चौदह वर्ष एक रात्रि से कट जाएँगे,
दुखी करना न पिताजी को, बोले राम ।

फिर राम, सीता और लक्ष्मण तीनों ने,
प्रदिक्षणा कर प्रणाम किया महाराज को,
कौसल्याजी को प्रणाम कर लक्ष्मण ने,
प्रणाम किया अपनी माँ सुमित्रा को ।

रोते हुए सुमित्राजी पुत्र से बोलीं,
करना न प्रमाद राम की सेवा में,
हर तरह तुम्हारे आश्रयदाता हैं ये,
कोताही न हो उनकी आज्ञापालन में ।

राम का वनगमन

सनातन और सदाचार रघुकुल का,
दान देना और व्रतचर्या का पालन,
यज्ञ करना, बात पर टिके रहना,
संग्राम में कर देना तन का हवन ।

वन में यदि कभी हो आए स्मरण.
राम को तुम पिता दशरथ ही समझना,
सीता को मेरे ही समान माता और,
वन को ही तुम अयोध्या समझना ।

चल दिए फिर रथ पर सवार हो,
तीनों, सीता, राम और लक्ष्मण,
आगे बढ़ाया रथ सुमन्त्र ने,
व्याकुल हो उठे सबके मन ।

दौड़ पड़े सब बालक और वृद्ध,
राम के पीछे, रथ के साथ,
अश्रुओं से भीग रहीं आँखें,
राम के दर्शन की लिए आस ।

राम कह रहे शीघ्र चलाओ रथ,
लोग कह रहे धीरे हाँको रथ को,
न धीरे चला सकते, न रोक सकते,
बड़ी दुविधा आ पड़ी सुमन्त्र को ।

उधर शोकाकुल रानियों के सहित,
पुत्र को देखने निकल पड़े दशरथ,
हाहाकार कर उठे लोग उन्हें देख,
पैदल ही चले आ रहे थे दशरथ ।

पीछे मुड़कर जो देखा राम ने,
माताएँ और पिता चले आ रहे पैदल,
जिसने रखा न कभी भूमि पर पाँव,
वे यूँ चले आ रहे महल से निकल ।

रथ शीघ्र चलाओ कह रहे थे राम,
और दशरथ कहते थे ठहरो, ठहरो,
दो चक्रों के बीच फँसे से सुमन्त्र,
समझ न पाए क्या करो, न करो ।

राम ने कहा जब लौटकर जाओगे,
पूछेंगे महाराज रथ क्यों न रोका,
कहना सुना नहीं कोलाहल के कारण,
यहाँ रुकने से उन्हें अधिक दुःख होगा ।

तब श्रीराम की ऐसी आज्ञा पाकर,
नगरवासियों को कहा वापस लौट जाएँ,
हाँकने लगे शीघ्रता से रथ को सुमन्त्र,
महाराज रुक गए वहीं टकटकी लगाए ।

जब तक धूल दिखी उड़ती,
देखते रहे उसी ओर महाराज,
फिर वहीं पृथ्वी पर गिर पड़े,
कान्तिहीन से हो गए महाराज ।

किसी तरह महाराज को उठाकर,
लौट के आयीं कौसल्या वहाँ से,
विलाप कर रहे पुत्र विछोह में,
अश्रु थमते नहीं उनकी आँखों से ।

बोले, ले चलो मुझे कौसल्या के घर,
और कहीं शान्ति मिलेगी न मुझे,
काल समान उस रात्रि में उन्होंने,
कहा अब कुछ नहीं दिखता मुझे ।

श्रीराम दर्शन के लिए उनके पीछे,
गई मेरी दृष्टि लौटी न अभी तक,
कौसल्या से कहा वे छूकर देखें,
कैसे उनके प्राण टिके हैं अब तक ?

सुहृदधर्म[6] के अनुसार महाराज को,
मन्त्रियों ने लौटा लिया था आग्रह कर,
पर पुरवासी जो साथ चल रहे थे,
लौटे नहीं थे अभी उन्हें छोडकर ।

बार-बार प्रार्थना कर रहे थे राम से,
लौट चलें वे अयोध्या नगरी को,
पर मिथ्या न हो पिता का वचन,
राम शीघ्रता से चले जा रहे वन को ।

अपने में ऐसा दृढ़ अनुराग देख,
पिता की तरह राम ने कहा उनसे,
मेरे प्रति जो प्रेम और सम्मान है,
भरत का करना तुम बढ़कर इससे ।

अल्पवय होने पर भी भरत हैं,
सब तरह से राजा बनने योग्य,
चरित्रवान, ज्ञानी, कोमल, पराक्रमी,
सब तरह तुम्हारी रक्षा करने योग्य ।

उन नगरवासियों में से कुछ थे,
वृद्ध, ज्ञानी और तपस्वी ब्राह्मण,
घोड़ो से बोले, राम का हित चाहते,
तो बढ़ाओ न आगे अपने कदम ।

ब्राह्मणों को यूँ विलाप करते देख,
उतर गए राम सहसा ही रथ से,
चलने लगे तीनों धीरे-धीरे पैदल,
जब तक नगरवासी उन तक पहुँचे ।

ब्राह्मण बोले हमारा मन अभी तक,
लगा रहता था वेद के स्वाध्याय में,
छोड़ दिया अब हमने वह स्वाध्याय,
और लगा लिया मन तुम्हारे साथ में ।

वेद जो हमारा परम धन है,
वह तो है हमारे हृदय में,
पातिवृत्य धर्म से रक्षा करतीं,
हमारी पत्नियाँ रहेंगी घर में ।

हमारी आज्ञा मान तुम नहीं लौटते,
तो फिर कौन करेगा धर्म का पालन,
हममें से कुछ यज्ञादि छोड़ कर आए,
न लौटे तुम तो कैसे होगा समापन ?

तब तक जा पहुँचे तमसा नदी तक,
मानों रोक रही हो मार्ग राम का,
थके घोड़ों को रथ से खोल सुमन्त्र ने,
प्रबन्ध किया उनके विश्राम का ।

उस रात्रि रुके वे वहीं नदी किनारे,
चिन्ता कौसल्या, दशरथजी की करते,
किन्तु भरत के स्वभाव की सोच,
चिन्ता मिट गयी राम के मन से ।

पत्तों की शय्या ही बनी बिछौना,
लक्ष्मण पहरा दे, कर रहे गुणगान,
पुरवासियों को सोते देख राम ने कहा,
तुरन्त कर देना चाहिए हमें प्रस्थान ।

[6] जिसको शीघ्र बुलाना अभीष्ट हो उसे पहुँचाने दूर तक न जाना ।

जागने पर ये हमें जाने न देंगे,
छोड़ेंगे न कभी ये हमारा साथ,
सुमन्त्र को कहा, ऐसे निशान बनाओ,
किस दिशा गया रथ, होवे न ज्ञात ।

प्रातःकाल उन्हें जब राम न दिखे,
न पता चला किस ओर गए वो,
विलाप करते पुरवासी लौट गए,
उसी मार्ग से जिससे आए थे वो ।

उत्तर कौसल की दक्षिण सीमा पर,
पहुँच गए सुबह होने तक श्रीराम,
वहाँ से वेसवा नदी को पार कर,
दक्षिण की ओर किया प्रयाण ।

बहुत देर बाद गोमती नदी पार कर,
रथ पर बैठ करी सई नदी पार,
वहाँ दिखलाई वह भूमि सीता को,
मनु से इक्ष्वाकु को मिली उपहार ।

बहुत विस्तृत थी वह भूमि,
अनेक राष्ट्र बसे हुए थे उस पर,
फिर कोसल देश की सीमा लाँघ,
जा पहुँचे त्रिपथी गंगा के तट पर ।

'इंगुदी' वृक्ष के समीप रुक उन्होंने,
किया उस रात्रि शृंगवेरपुर में विश्राम,
उनका मित्र गुह निषादराजा वहाँ का,
आया मिलने उनका वहाँ आना जान ।

बहुत तरह का भोजन, अन्य सामग्री,
चतुरंगिनी सेना भी गुह साथ में लाया,
आलिंगन कर स्वागत किया राम ने,
मेरा सर्वस्व आपका है, गुह ने बताया ।

राम ने कहा वे उस समय किये हैं,
वनवासी तपस्वियों का व्रत धारण,
उनकी लायी हुई सामग्रियों का वे,
कर न सकेंगे उपभोग, इस कारण ।

सुमन्त्र और लक्ष्मण संग गुह भी,
जगे रात्रि भर धनुष लिए हाथ में,
लक्ष्मण को कहा विश्राम कर लें,
वो और सेना करेंगे रक्षा रात में ।

गुह की बात सुन कहने लगे लक्ष्मण,
भय नहीं कोई आपके संरक्षण में,
पर मेरा कर्त्तव्य नहीं कि सौ जाऊँ,
कर्त्तव्य मेरा कि रहूँ तत्पर सेवा में ।

सुबह गंगा पार जाना चाहा राम ने,
गुह ने नाव तैयार कर रखी थी,
कहा सुमन्त्र को वे वापस लौट जाएँ,
ऐसा उपाय करें कि पिता हों न दुखी ।

कहा, पूज्य पिताजी के चरणों में,
मेरी ओर से प्रणाम निवेदन करना,
अयोध्या छोड़ने या वनवास का,
कोई दुःख नहीं है हमें, कहना ।

कहना, चौदह वर्ष वनवास कर,
फिर शीघ्र ही अयोध्या लौटेंगे हम,
कौसल्या और अन्य माताओं से भी,
कहना, शीघ्र आकर मिलेंगे हम ।

सुमन्त्र बोले इस खाली रथ को देख,
हो जाएँगे अयोध्यावासी बड़े व्याकुल,
कैसे सान्त्वना दूँगा आपकी माता को,
आपके दर्शन को जो होंगी आकुल ।

गुह द्वारा गंगा पार ले जाना

लौटूँगा न अयोध्या, मैं आपके बिना,
या ले चलें मुझे अपने संग वन में,
यदि आप मेरा त्याग करते ही हैं तो,
रथ सहित भस्म हो जाऊँगा अग्नि में ।

जानता हूँ आपका मेरे प्रति अनुराग,
पर क्यों भेज रहा, कहा राम ने, सुने,
मान लेंगी केकैयी कि मैं वन गया,
कोई शंका न रहेगी उनके मन में ।

सुमन्त्र को समझा-बुझा राम ने,
गुह से बरगद का दूध मँगवाया,
जटा धारण कर दोनों भाइयों ने,
तपस्वियों का सा वेष अपनाया ।

पहले सीता, फिर लक्ष्मण, फिर राम,
चढ़े नाव पर, गंगा पार जाने को,
गुह के बन्धुओं ने खेकर नाव,
दक्षिण तट पर उतार दिया उनको ।

पार उतर राम ने कहा, हे लक्ष्मण !
सावधान रहना सदा सीता की रक्षा में,
तुम आगे चलो, तुम्हारे पीछे सीता,
सबसे पीछे रक्षा करता चलूँगा मैं ।

एकचत्वारिंश: सर्ग: से चतुश्चत्वारिंश: सर्ग:

गंगा पार उतर कर जा पहुँचे वे,
समृद्ध और रमणीय वत्स देश में,
कहा राम ने लौट जाओ तुम लक्ष्मण,
मेरे कारण हो सकतीं माताएँ कष्ट में ।

कहीं सौभाग्यमद से गर्वित केकैयी,
सताती न हो दोनों की माताओं को,
ऐसा कह जब कुछ शान्त हुए राम,
तो कहने लगे लक्ष्मण यह उनको ।

उचित नहीं आपका यूँ सन्तप्त होना,
सीताजी और मुझे दुःख होता है इससे,
जी नहीं सकते हम दोनों क्षण भर,
आपके बिना, जल बिन मछली से ।

आपके बिना मैं देखना नहीं चाहता,
पिता, माता या सहोदर शत्रुघ्न को,
स्वर्ग की भी इच्छा नहीं मुझे,
आपको छोड़ कहीं जाना न मुझको ।

गंगा-यमुना के संगम की ओर चलते,
चारों ओर धुआँ उठता देखा मार्ग में,
जाना महर्षि भारद्वाज का आश्रम वहाँ,
प्रणाम किया ऋषि प्रवर को उन्होंने।

परिचय दे, पिता की आज्ञा बतला,
कहा हम तपोवन में प्रवेश करेंगे,
कन्दमूल, फल-फूल आदि खाकर,
तपस्वी धर्म का पालन करेंगे ।

भरद्वाजजी ने सत्कार किया उनका,
बोले, आपके वनवास का मैंने भी सुना,
निकट ही स्थान बताने पर राम ने कहा,
यहाँ लोगों का होता रहेगा आना-जाना ।

करी विनती एकान्त स्थान बतायें,
जहाँ लग सके सीता का मन,
मुनि ने दस कोस पर पर्वत बताया,
ऋषियों से सेवित, मन लुभावन ।

एक रात्रि बिता महर्षि के आश्रम में,
प्रातःकाल चल दिए वे चित्रकूट को,
एक बेड़ा बना पार किया उन्होंने,
मार्ग में बहती वेगवती यमुना को ।

वन में रात बिता, सुबह राम ने,
कुछ-कुछ सोये लक्ष्मण को जगाया[7],
चल दिए ऋषि के बताए मार्ग पर,
कुछ देर बाद चित्रकूट नजर आया ।

वाल्मीकि आश्रम में जा प्रणाम कर,
वनवास का कारण बताया उन्होंने,
लक्ष्मणजी से उचित बाँसादि मँगा,
वहीं एक पर्णकुटी बनाई उन्होंने ।

पञ्चचत्वारिंश: सर्ग: से एकोनपन्चास: सर्ग:

उधर शृंगवेरपुर से सुमन्त्र चले,
उदास मन से अयोध्या नगरी को,
पूछने लगे लोग राम कहाँ हैं,
करने लगे विलाप, राम बिना वो ।

महल पहुँच महाराज दशरथ को,
सुनाया राम का भेजा सन्देश,
मूर्छित हो गिर पड़े दशरथजी,
दोनों माताओं को भी घोर क्लेश ।

जब कुछ सचेत हुए महाराज,
कहने लगे बुलाकर सुमन्त्र को,
शीघ्र राम के पास ले चलो मुझे,
प्राण जाना चाहते त्याग शरीर को ।

व्याकुल हो उन्हें विलाप करते देख,
भय से भर गई महारानी कौसल्या,
बोलीं सुमन्त्र से मुझे भी ले चलो,
जहाँ गए राम, लक्ष्मण और सीता ।

चिन्ता न करें आप, बोले सुमन्त्र,
उनकी, महाराज की और स्वयं की,
पिता की आज्ञा पालन करने से,
चिरकाल तक कीर्ति रहेगी राम की ।

भर आया हृदय महारानी कौसल्या का,
उलाहना देते कहने लगीं दशरथजी से,
दयालु और उदार विख्यात हैं आप,
पर निरपराध को निकाल दिया घर से ।

पति, पुत्र और निकट सम्बन्धी,
स्त्रियों को क्रमश: ये ही सहारा,
इनमें आप तो मेरे हैं ही नहीं,
राम का भी छुड़ा दिया सहारा ।

सत्यानाश कर दिया आपने सबका,
प्रसन्न हैं केवल केकैयी और भरत,
दुखी होकर महाराज सोचने लगे,
याद आया तब बाण से हुआ वध ।

सन्तप्त और विकल हो महाराज,
कांपते हुए बोले हाथ जोडकर,
तुम तो दयालु आर प्रेममयी हो,
और दुःख न दो मुझे ऐसा कहकर ।

हे देवी ! तुम तो जानती हो,
स्त्री के लिए पति सबसे बढ़कर,
चाहे वह गुणवान हो, न हो,
दिल न दुखाना, अप्रिय बोलकर ।

---

[7] लोक में ऐसी भ्रान्त धारणा है कि वनवास के चौदह वर्षों में लक्ष्मणजी कभी सोये नहीं । उक्त पद इसका खण्डन करता है ।

वर्षा के जल की तरह कौसल्या की,
आँखों से आँसू बहने लगे,
भयभीत हो महाराज से बोलीं,
उनके हाथ अपने सिर पर रख के ।

अपना सिर आपके चरणों में रख,
प्रणाम करती हूँ महाराज आपको,
मुझसे याचना करना आपका,
मृत्यु समान कष्टदायी है मुझको ।

प्रशंसनीय और बुद्धिमान पति,
विनती कर प्रसन्न करता जिसको,
दोनों लोकों की नही रहती,
श्रेय न मिलता कभी उस स्त्री को ।

जानती हूँ मैं स्त्री-धर्म को,
यह भी कि आप हैं सत्यवादी,
मैंने जो कुछ कहा आपसे,
कहा पुत्र विछौह के कारण ही ।

धैर्य नष्ट कर देता शोक,
शास्त्रज्ञान भी नष्ट कर देता,
शोक से बढ़ शत्रु न मनुष्य का,
जो उसका सर्वनाश कर देता ।

वे पाँच दिन बीते पाँच वर्ष से,
छटी रात्रि पापकृत्य याद हो आया,
कौसल्या से कहने लगे महाराज,
अपने कर्मों का फल सबने पाया ।

शब्दभेदी कहला प्रसिद्धि पाने को,
कुमारावस्था में मैंने वो पाप किया था,
वर्षा ऋतु में धनुष-बाण धारण कर,
शिकार करने मैं सरयू तट गया था ।

रात्रि में जल पीने आने के लिए,
किसी वनपशु का करने शिकार,
उस समय इन्द्रियों के अधीन हो मैं,
कान लगाए कर रहा था इन्तजार ।

उस अँधेरी मध्य रात्रि में मैंने,
सुना जल भरते घड़े का शब्द,
हाथी की चिंघाड़ सा समझा मैंने,
कुछ दिखा नहीं, बस सुना शब्द ।

एक तीक्ष्ण बाण निकाल तरकस से,
छोड़ दिया शब्द की ओर साधकर,
एक तपस्वी जो जल भर रहा था,
लगा वह भयंकर बाण उसे जाकर ।

हाय ! हाय ! सुनकर उसकी मैंने,
देखा जाकर वह पड़ा था घायल,
अपनी नेत्राग्नि से करता दग्ध,
बोला मैं तो लेने आया था जल ।

क्या बिगाड़ा भला मैंने आपका,
मेरे प्राण जो आप ले रहे,
प्यासे मेरे अन्धे माता-पिता,
मेरे लौटने की बाट जोह रहे ।

मार डाला आपने मुझे और उनको,
जाकर उन्हें यह समाचार दे दो,
किसी तरह करो उन्हें प्रसन्न,
ताकि शाप न देदें वे तुमको ।

जैसे ही बाण निकाला मैंने,
उस मुनि-पुत्र ने छोड़ दिए प्राण,
जल लेकर गया मैं सहमा हुआ,
कैसे करूँ अपना अपराध बयान ?

जोह रहे थे वे बाट पुत्र की,
आहट सुन बोले देर लगा दी,
प्यासे बैठे हैं हम दोनों,
जल देकर प्यास बुझाओ हमारी ।

मैंने कहा, मैं आपका पुत्र नहीं,
दशरथ नामक आपका अपराधी,
वनपशु समझ, बाण चलाकर मैंने,
अनजाने उसकी हत्या कर दी ।

दारुण वृतान्त सुन मेरे मुख से,
हाथ जोड़े खड़े मुझसे मुनि ने कहा,
यदि स्वयं न बताते यह घोर कृत्य,
सौ टुकड़े हो तुम्हारा सिर फट जाता ।

अज्ञान से यह कर्म किया तुमने,
इसलिए खड़े हो जीवित अभी तक,
सारे रघुकुल का नाश हो जाता,
यदि किया होता ऐसा जान-बुझकर ।

मुनि बोले हमें ले चलो वहाँ,
मृत शरीर पड़ा जहाँ हमारे पुत्र का,
दोनों गिर पड़े शरीर पर उसके,
देखी न जा सकती उनकी व्यथा ।

जलन्जली दे पुत्र को मुनि ने,
सामने खड़े हुए कहा मुझसे,
मेरे ही जैसे पुत्र-वियोग में,
प्राण त्यागोगे तुम भी ऐसे ।

आज मुझे वह याद हो आया,
मूर्खतावश पापकर्म किया जो मैंने,
उसी पापरूपी कर्म का फल,
आज प्रत्यक्ष है मेरे सामने ।

ऐसा कह, मृत्यु भय से त्रस्त,
बोले दशरथ, मैं देख नहीं पा रहा,
पुत्रशोक के कारण अब मैं,
हे कौसल्या ! प्राणों को त्याग रहा ।

हा राघव ! हा रघुकुल दीपक !
यह कह त्याग दिए प्राण उन्होंने,
गिर पड़ीं कौसल्या और सुमित्रा,
ढाँढस अब कौन बँधाए उन्हें ?

पन्चास: सर्ग: से चतुपन्चास: सर्ग:

उलाहना देती कौसल्या बोली,
केकैयी, मनोरथ पूर्ण हो गया तेरा,
परलोकवासी बना दिया महाराज को,
निष्कणटक राज्य हो गया तेरा ।

पति विहीन हो कौन जीना चाहेगी,
जीने की इच्छा नहीं अब मुझे,
त्याग कर दिया जिसने धर्म का,
तू ही भोग, राज्य मिले तुझे ।

कोई पुत्र तब वहाँ नहीं था,
सो शव को रखा गया तेल में,
कहने लगे विज्ञजन वशिष्ठजी से,
करना चाहिए राजा नियुक्त उन्हें

शोभा नहीं पाता सम्राट हीन राज्य,
विपन्न हो, धीरे-धीरे उजड़ जाता,
सब ओर भय और आतंक की छाप,
कोई नागरिक शान्ति से सो नहीं पाता ।

जैसे होती बिना जल की नदी,
अथवा बिना घास के वन होता,
ग्वालों के बिना ज्यों गौएँ होती,
बिना राजा के राज्य वैसा ही होता ।

होता नहीं राज्य में कोई किसी का,
सब एक-दूसरे का गला काटते,
बड़ी मछली खा जाती छोटी को,
अराजक लोग अपना हुकुम चलाते ।

राजा समाज के लिए नेत्र सा होता,
सत्य और धर्म की वो रक्षा करता,
यम, कुबेर, इन्द्र और वरुण से भी,
कर्त्तव्यपरायण राजा कई बड़ा होता ।

तब वशिष्ठजी ने दूतों को भेजा,
शीघ्र जाकर लिवा लाएँ भरत को,
कहना, कराना है कोई आवश्यक काम,
यहाँ जो घटा वो बताना न उनको ।

उधर भरत ने एक अशुभ स्वप्न देखा,
विचलित कर दिया उस स्वप्न ने उन्हें,
देखा पिता को एक पर्वत से गिरते,
और तेल में डूबते हुए देखा उन्हें ।

और भी बहुत सी अशुभ बातें,
देखीं भरत ने अपने स्वप्न में,
स्वयं की, राम, लक्ष्मण या पिता की,
मृत्यु की द्योतक, समझी उन्होंने ।

तभी अयोध्या से दूत आ पहुँचे,
कहा, पूछते सब आपकी कुशलता,
यथोचित सत्कार कर दूतों का,
भरत ने पूछी सबकी कुशलता ।

कहा दूतों ने, चाहते आप जिनकी,
अयोध्या में कुशलपूर्वक हैं वो सभी,
लक्ष्मी उद्यत आपका वरण करने को,
रथ जुड़वाइए यात्रा के लिए जल्दी ।

नाना, मामा से आज्ञा ले चले भरत,
पहुँच गए अयोध्या शीघ्रता से,
यशस्विनी प्रतीत नहीं होती अयोध्या,
कहा सारथियों से, नगर देख दूर से ।

यज्ञकर्ता, गुणी, वेदों में पारंगत,
सुनाई देता था उनका घोष नगर में,
न चहल-पहल, न मांगलिक चिन्ह,
आशंका हो रही है मेरे मन में ।

जो अयोध्या में कभी न देखे,
ऐसे अनेक अप्रिय दृश्य देखते,
सिर झुकाए, हर्षशून्य भरत ने,
प्रवेश किया पिता के महल में ।

पञ्चपन्चास: सर्ग: से एकोनषष्टितम: सर्ग:

पिता को वहाँ न पाकर भरत,
गए माता के दर्शन के लिए,
आगे बढ़ भरत का स्वागत कर,
पूछने लगी पिता आदि के लिए ।

नाना आदि की कुशल बता भरत ने,
पूछा पिता बिन क्यों सूना है भवन,
वे प्राय: रहते थे आपके ही भवन में,
पर यहाँ भी हुए नहीं उनके दर्शन ।

पिता को न पा, विचलित भरत को,
केकैयी ने बतलाई वह अप्रिय बात,
बोली जो गति सब प्राणियों की होती,
तुम्हारे पिता भी उसी को हुए प्राप्त ।

निष्कपट भरत व्याकुल हो गिर पड़े,
और सचेत हुए वे बड़ी देर के बाद,
बोले, राम का राज्याभिषेक सोच मैं,
चला था वहाँ से प्रसन्नता के साथ ।

पूछा ऐसा क्या रोग था पिता को,
कि असमय ही हो गए परलोकवासी,
श्रीराम आदि मेरे बन्धु धन्य हैं,
अंत समय उन्होंने सेवा की उनकी ।

फिर पूछा भरत ने राम कहाँ हैं,
पिता तुल्य ही होता है बड़ा भाई,
इस समय वे ही आश्रय हैं मेरा,
पिता ने मुझे क्या आज्ञा सुनाई ?

यथार्थ बात बताई तब केकैयी ने,
कहा, विलाप करते सिधारे महाराज,
लौटा हुआ जो देखेंगे उन तीनों को,
सफल मनोरथ होंगे, कह गए महाराज ।

यह सुन पूछने लगे भरत उनसे,
कहाँ गए हैं राम, सीता, लक्ष्मण,
भरत प्रसन्न होगा सोच केकैयी ने,
बतलाया वे तीनों चले गए वन ।

धारण कर वल्कल वस्त्र राम,
चले गए हैं दण्डक नामक वन को,
किंचित कोई अपराध हुआ हो,
पूछा क्यों मिला ये दण्ड राम को ?

पूछने पर यूँ महात्मा भरत के,
खुद को पण्डित समझ केकैयी बोली,
कोई अपराध किया न राम ने,
मैंने ही उन्हें वन भेजा, वो बोली ।

सुन राम के राज्याभिषेक की बात,
माँग लिया राज्य तुम्हारे लिए मैंने,
भिजवा दिया राम को दण्डक वन,
याचना कर तुम्हारे पिता से मैंने ।

अपने प्रिय पुत्र राम को न देख,
पुत्रशोक में त्याग दिए प्राण उन्होंने,
अब तुम स्वीकार करो राजपद को,
तुम्हारे लिए ही यह सब किया मैंने ।

अंत्येष्टि संस्कार करा पिता का,
फिर तुम अपना आभिषेक कराओ,
बोले भरत, मेरा सर्वनाश हो गया,
मुझे राज्य से क्या प्रयोजन, बताओ ?

राम को वनवासी बनाकर तूने,
महाराज के भी प्राण ले लिए,
घोर दुःखदायी काम किया ये तूने,
कटे घाव पर नमक सा मेरे लिए ।

मेरे ज्येष्ठ और धर्मात्मा भाई राम,
सदा उत्तम व्यवहार करते थे तुझसे,
बड़ों का अनुसरण करते वो तेरी,
अपनी माता सी ही सेवा करते थे ।

मेरी ज्येषठा माता कौसल्या भी,
सगी बहन का सा करती व्यवहार,
उसी सरल-हृदया कौसल्या पुत्र का,
तूने किया यह कैसा प्रतिकार ?

क्या पाया तूने वन में भेजकर,
वीर, यशस्वी और उदार राम को,
पुरुषसिंह राम और लक्ष्मण बिना,
क्या चला सकता मैं राज्य को ?

साम-दान आदि उपायों से यदि,
चला भी लूँ किसी तरह राज्य को,
तो भी ऐसा कदापि न करूँगा,
पूरा न करूँगा तेरी मंशा को ।

यही परम्परा है हमारे रघुकुल की,
बड़ा भाई ही पाता राज्य पिता का,
कहाँ से आई तुझमें यह दुर्बुद्धि,
कलंकित करे इसे, तूने कैसे सोचा ?

पूरा होने न दूँगा तेरा ये मनोरथ,
लौटा लाउँगा मैं राम को वन से,
और बहुत कुछ कह बोले भरत,
मैं ही जाऊँगा वन मुनि वेश में ।

राम प्राप्त कर लेंगे जब राज्य,
सफल मनोरथ होगा तब मेरा,
कर सकूँगा मार्जन इस पाप का,
तभी दिखा सकूँगा मैं चेहरा ।

सुना भरत को जब रोते-बिलखते,
कौसल्या ने चाहा देखना भरत को,
इधर चलीं वे मिलने भरत से,
उधर भरत आ रहे मिलने उनको ।

मार्ग में मिल माता कौसल्या से,
भरत-शत्रुघ्न लिपट कर लगे रोने,
कौसल्या बोली, तुम्हें अभिलाषा थी,
क्रूरता दिखाई इसके लिए केकैयी ने ।

मेरे पुत्र को वल्कल वस्त्र पहना,
वन भेज, केकैयी ने क्या पाया,
मुझे भी भेज दे वो उसी वन को,
जहाँ केकैयी ने राम को भिजवाया ।

या मैं ही सुमित्रा को साथ ले,
स्वयं ही चली जाऊँगी वन को,
या तू मुझे वहाँ छोडकर आ जा,
भेजा गया जहाँ मेरे राम को ।

दिलवा ही दिया है तुझे केकैयी ने,
यह धन-धान्य से भरा-पूरा राज्य,
सुख से उपभोग करो तुम इसका,
मैं तो वन जाऊँगी सुमित्रा के साथ ।

कौसल्या के कठोर वचन सुन,
मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े भरत,
जब सचेत हुए तो हाथ जोड़कर ,
माता कौसल्या से कहने लगे भरत ।

मुझ अनभिज्ञ और निर्दोष को,
क्यों दोष दे रहीं हैं आप,
कैसा अगाध प्रेम मेरा श्रीराम से,
हे माता ! इसे तो जानती हैं आप ।

सत्यव्रती, सज्जन-श्रेष्ठ राम के,
वनवास का परामर्श दिया हो जिसने,
बुद्धि उस अभागे की कभी भी,
लगे न किसी शास्त्र के पालन में ।

जिसकी अनुमति से राम वन गए,
नीच जाती का वह पापी सेवक हो,
वह भाग्यहीन व्यक्ति सदा के लिए,
घोर निंदक पापकर्मों का भागी हो ।

देख न पाये वो राम का अभिषेक,
सज्जनों द्वारा बहिष्कार हो उसका,
मर जाए वह बिना पुत्र के,
सब तरह से विनाश हो उसका ।

तरह-तरह से आशवस्त कर भरत,
दुखी हो गिर पड़े पृथ्वी पर,
कौसल्या बोलीं, सौभाग्य है मेरा,
तुम दृढ़-प्रतिज्ञ हो टिके धर्म पर ।

फिर भ्रातृवत्सल भरत को उठा,
हृदय से लगा, रोने लगीं कौसल्या,
मोह और शोकोद्वेग के कारण,
भरत का भी मन विह्वल हो उठा ।

भरत को यूँ शोक से सन्तप्त देख,
सुवक्ता महर्षि वशिष्ठ लगे यह कहने,
शोक समाप्त करो, समय हो चुका,
चलो अंतिम विदा महाराज को करने ।

यथाविधि राजकीय सम्मान सहित,
अंत्येष्टि-संस्कार हुआ महाराज का,
दस दिन तक मनाया गया शोक,
तेरहवें दिन हुआ सब कृत्य पूरा ।

वन जाने को उत्सुक भरत से,
शत्रुघ्न बोले क्यों न रोका लक्ष्मण ने,
क्यों राम को वन जाने दिया,
पिताजी को बन्दी बनाया न उसने ?

स्त्री के वशवर्ती होकर महाराज,
जब उद्यत थे अन्याय करने को,
छोड़ नीति-अनीति का विचार,
बन्दी बना लेना चाहिए था उनको ।

जब यह वार्तालाप चल ही रहा था,
कुबड़ी मन्थरा आ पहुँची सजी-धजी,
द्वारपालों उसे पकडकर बोले उनसे,
इस सबका कारण है यही पापिनी ।

क्रोधित हो शत्रुघ्न लगे घसीटने,
चाह रहे ले ले वे उसके प्राण,
पर रोक लिया भरतजी ने उन्हें,
और कहा दे दें उसे वे क्षमादान ।

बोले, हे तात ! अवध्य हैं स्त्रियाँ,
उचित नहीं कोई वध करे उनका,
अत: छोड़ दो तुम इस कुब्जा को,
और कर दो तुम इसको क्षमा ।

यदि स्त्रियाँ अवध्य न होतीं,
और राम घृणा न करते मातृहंता से,
तो अक्षम्य अपराधिनी केकैयी को,
मार डाला होता मैंने कभी से ।

यदि राम जान गए कि हमने,
मार डाला है इस कुब्जा को,
तो वे धर्मात्मा राम कभी भी,
क्षमा न करेंगे हम दोनों को ।

षष्टितम: सर्ग: से पञ्चषष्टितम: सर्ग:

चौदहवें दिन मन्त्रिगणों ने कहा,
अभिषेक करा भरत ! करो प्रजापालन,
बोले भरत, हमारे कुल में सदा ही,
ज्येष्ठ पुत्र ही ग्रहण करता सिंहासन ।

ऐसा आदेश देना न चाहिए आपको,
श्रीराम ही हैं हमारे ज्येष्ठ भ्राता,
वे ही अब हमारे सम्राट होंगे,
मैं वनवास करूँगा चौदह वर्ष का ।

करें आप चतुरंगिनी सेना तैयार,
मैं लौटाकर ले आऊँगा राम को,
फिर कारीगरों को कहा वे जाकर,
समतल करें ऊँचे-नीचे मार्ग को ।

सेना के जाने के मार्ग को,
ठीक कर दिया तुरन्त शिल्पियों ने,
उधर प्रात: होते ही बुलवा भेजा,
वशिष्ठजी ने गणमान्यों को सभा में ।

भरत ने किया जब प्रवेश सभा में,
सम्मान किया उनका सबने हर्षित हो,
वशिष्ठजी बोले, ग्रहण करो, हे भरत !
पिता और भाई प्रदत्त सिंहासन को ।

बहुत दुःख हुआ महात्मा भरत को,
वशिष्ठजी की यह बात सुनकर,
अपने कर्त्तव्य निश्चय की आकांक्षा से,
बोले वे श्रीराम का स्मरण कर ।

धर्मात्मा, श्रेष्ठ, बुद्धि के सागर,
महात्मा श्रीराम का है यह राज्य,
शास्त्र मत को जानने वाला मैं,
कैसे छीन सकता हूँ यह राज्य ?

अनार्यों से सेवित, सुख-शान्ति रहित,
इस राज्य को यदि मैं करता हूँ ग्रहण,
कहलाऊँगा इक्ष्वाकुकुल की कीर्ति का,
नष्ट करने वाला और कुल-कलंक ।

करूँगा उपाय मैं हर प्रकार के,
कि लौटा सकूँ श्रीराम को वन से,
यदि मेरा प्रयास सफल न हुआ,
तो मैं भी लौटूँगा न वन से ।

फिर कहा सुमन्त्र से, सब प्रबंध करें,
और घोषणा कर दें पूरे नगर में,
चल दिए वन को दूसरे ही दिन,
तीनों माताएँ भी चलीं साथ में ।

झुण्ड के झुण्ड नगरवासी भी,
चल दिए साथ करते गुणगान,
दूर चलकर वे पहुँचे शृंगवेरपुर,
राम के मित्र गुह का स्थान ।

उस रात्रि वे सब रुके वहीं,
सेना देख शंका हुई गुह को,
क्या इतनी बड़ी सेना ले भरत,
जा रहा राम का वध करने को ?

बन्धु-बान्धवों को कहा गुह ने,
हथियार ले तैयार रहो कछार में,
पार कर सकेंगे गंगा ये लोग,
राम से प्रेम यदि इनके हृदय में ।

सैनिकों को आदेश दे गया गुह,
अनेक भेंट ले, मिलने भरत से,
कहा, यह सम्पूर्ण राज्य है आपका,
निवास करें आप यहाँ सुख से ।

जानना चाहता था मंशा भरत की,
सो युक्तियुक्त ये वचन कहे उसने,
भरद्वाज आश्रम का मार्ग पूछने पर,
हम साथ चल दिखा देंगे, कहा उसने ।

फिर कहने लगा यह विशाल सेना,
शंकित कर रही है मेरे मन को,
क्या करना चाहते अहित राम का,
साथ ले जाकर इतनी बड़ी सेना को ?

निष्कपट भरत बोले निषादराज से,
वह पापपूर्ण समय कभी न आवे,
राम को मानता मैं अपने पिता-तुल्य,
चाहता हूँ वे मेरे साथ लौट आवें ।

यह सुन प्रसन्न हो बोला गुह,
आप धन्य हैं, हे महात्मा भरत !
अनायास प्राप्त विशाल राज्य,
सहज ही त्याग रहे हैं, आप भरत !

लौटाने जा रहे हैं जो आप राम को,
आपकी कीर्ति बढ़ाएगा, यह शुभ कार्य,
चिरकाल आपका यश बना रहेगा,
आप ही कर सकते हैं यह कार्य ।

सुबह होने पर अनेकों नावों द्वारा,
पार उतारा उन सबको गंगा से,
फिर वशिष्ठ आदि ऋषियों के साथ,
भरत मिलने गए, मुनि भरद्वाज से ।

सेना को एक कोस दूर छोड़,
राजसी वस्त्र त्याग, दो वस्त्रों में,
पुरोहितों को आगे कर चले भरत,
मुनि भरद्वाज के दर्शन करने ।

आगे बढ़ वशिष्ठजी से मिले मुनि,
भरत ने प्रणाम किया मुनि-चरणों में,
कहने लगे मुनि मुझे शंका हो रही,
इतनी सेना क्यों ले जा रहे साथ में ?

भर आए भरत की आँखों में आँसू,
बोले, व्यर्थ ही है मेरा जीवन तो,
आप भी मुझे ऐसा ही मानते,
उन्हें लौटा ले जाना चाहता मैं तो ।

मेरे मन के अभिप्राय को जानकर,
यदि आप प्रसन्न हों मुझ पर,
मुझे बताएँ हे महामुनि ! इस समय,
पृथ्वीनाथ राम होंगे कहाँ पर ?

वशिष्ठजी आदि ने भी की प्रार्थना,
कि बतला दें मुनि, श्रीराम का पता,
तब प्रसन्न हो वे बोले भरत से,
तुम्हारा मन रघुकुल के गुणों से सजा ।

यद्दपि मैं जानता था तुम्हारा भाव,
पर पूछा तुम्हारी कीर्ति बढ़ाने को,
चित्रकूट नामक महापर्वत पर पाओगे,
राम, सीता और लक्ष्मण, तीनों को ।

भरद्वाजजी के आग्रह करने पर,
उस रात्रि रुके वे वहीं आश्रम में,
फिर प्रात: मुनि से आज्ञा ले वे,
चले चित्रकूट को, राम से मिलने ।

ढाई योजन दूर बताया चित्रकूट,
मन्दाकिनी बहती पर्वत के उत्तर में,
नदी से मिला हुआ स्थित वह पर्वत,
निश्चय ही राम मिलेंगे वहाँ तुम्हें ।

पर्वत के निकट पहुँच भरतजी ने,
योग्य सैनिकों को भेजा वन में,
सावधानी से सैनिक करें अन्वेषण,
राम और लक्ष्मण दिख जाएँ उन्हें ।

एक जगह देखा सैनिकों ने,
एक धूमशिखा वहाँ उठ रही,
अग्नि नहीं होती मनुष्य बिना,
सो दोनों भाई अवश्य होंगे वहीं ।

सैनिकों को पीछे छोड़ चले भरतजी,
सुमन्त्र और गुरु वशिष्ठजी के साथ,
सारा समाज सोच रहा था मन में,
श्रीराम के दर्शन होंगे शीघ्र ही प्राप्त ।

षट्षष्टितम: सर्ग: से सप्ततितम: सर्ग:

उधर बहुत दिन बीतने पर श्रीराम,
चित्रकूट का दर्शन करा रहे सीता को,
दिखलाकर मन्दाकिनी की शोभा,
पर्वत के शिखर पर बैठे थे वो ।

तभी सेना के चलने से उड़ी धूल,
आकाश में उन्हें पड़ी दिखलाई,
साथ ही सुना भारी कोलाहल,
वन में पशु भी भागते दिए दिखाई ।

एक पेड़ पर चढ़ देखा लक्ष्मण ने,
उत्तर में चली आ रही एक सेना,
सावधान हो जाएँ, कहा राम से,
और गुफा में जा छिप जाएँ सीता ।

ध्वजचिन्ह देख क्रोधित हो बोले,
केकैयी पुत्र भरत चला आ रहा,
निष्कण्टक राज्य पाने के लिए,
हम दोनों का वध करना चाह रहा ।

पर देख लेंगे आज उसे हम,
कोई पाप नहीं उसे मारने में,
अनिष्ट किया, त्याग दिया धर्म,
उसका वध कर, पृथ्वी को भोगें ।

उसे ही नहीं केकैयी को भी मैं,
भाई-बन्दों के साथ मार डालूँगा,
बहुत दिनों के रोके हुए क्रोध से,
शत्रु को समूल नष्ट कर डालूँगा ।

उसे शान्त करने को बोले श्रीराम,
क्या करूँगा मैं भरत का वध कर,
प्रतिज्ञा ले पिता की आज्ञापालन की,
नहीं कुछ ले सकता, निन्दित होकर ।

हे लक्ष्मण ! शपथ खाकर कहता हूँ,
नहीं कुछ चाहिए मुझे अपने लिए,
धर्म, अर्थ, काम, पृथ्वी और राज्य,
चाहता हूँ सब भाइयों के ही लिए ।

हे सौम्य ! दुर्लभ नहीं है मेरे लिए,
समस्त पृथ्वी का राज्य पा लेना,
किन्तु हे लक्ष्मण ! मैं नहीं चाहता,
इन्द्र पद को भी अधर्म से लेना ।

तुम्हारे, भरत या शत्रुघ्न बिना मुझे,
सुख मिलता हो यदि किसी चीज से,
तो हे लक्ष्मण ! वे सभी वस्तुएँ,
भस्म हो जाएँ जलकर अग्नि से ।

मैं समझता हूँ भ्रातृवत्सल भाई भरत,
जब ननिहाल से लौटकर आया होगा,
जानकर हमारा वल्कल पहन वनगमन,
वो हमसे मिलने ही यहाँ आया होगा ।

बहुत सम्भव है माता से क्रुद्ध हो,
और कह कर उसे कुछ कटु वचन,
पिताजी को प्रसन्न करने के लिए,
आ रहा हो सौंपने मुझे सिंहासन ।

उचित ही है भरत इस समय,
इच्छुक है हमसे मिलने का,
लेकिन सम्भव नहीं मन से भी,
भरत सोचे हमारे अनिष्ट का ।

क्या कभी किया भरत ने पहले,
तुम्हारा अनिष्ट किसी तरह का,
फिर क्यों कर रहे संदेह उस पर,
क्यों उससे तुम्हें भय लग रहा ?

ऐसे कठोर और अप्रिय वचन,
कहने न चाहिए भरत के लिए,
अब उसे कहोगे, या अहित करोगे,
समझना वह सब तुम मेरे लिए ।

कैसी भी विकट स्थिति हो,
या कैसी भी आई हो विपत्ति,
पिता पुत्र का, भाई भाई का,
कर सकता है वध न कभी ।

यदि तुम चाहते हो राज्य,
तो कह दूँगा भरत के आने पर,
तुरन्त वह राज्य तुम्हे दे देगा,
देर करेगा न वो क्षण भर ।

बहुत लज्जित हुए लक्ष्मण यह सुन,
वे तो बस चाहते थे हित राम का,
बोले, मुझे ऐसा जान पड़ता है कि,
आगमन हो रहा स्वयं महाराज का ।

लक्ष्मण को लज्जित देख श्रीराम,
बोले मुझे भी ऐसा ही लग रहा,
दिखता नहीं पर पिताजी का छत्र,
मेरे मन में कुछ संदेह हो रहा ।

उधर भरत शत्रुघ्न को साथ ले,
शीघ्रता से आगे चले आ रहे,
कुटी में जटाजूटधारी राम को देख,
सोचा, मेरे ही कारण कष्ट पा रहे ।

दौडकर गिरना चाहा चरणों में,
पर मुख से कुछ कह न सके,
प्रणाम किया दोनों ने राम को,
राम ने लगा लिया उन्हें गले ।

पूछने लगे कुशलता पिता की,
और माताओं के विषय में भी, राम,
कहने लगे राज्य कर रहे नीति से,
यथोचित सबको देते सम्मान ?

सत्कार करते ब्राह्मणों और पूज्यों का,
मन्त्री बनाया सुयोग्य व्यक्तियों को,
तुम्हारी मन्त्रनाएँ तो गुप्त रहतीं,
शीघ्र पूरा कर लेते निर्धारित काम को ?

दूर रखते हो अवांछित लोगों को,
न प्रजा से अधिक कर लेते हो,
सेना को भोजन और वेतन समय से,
गुप्तचरों द्वारा सब रहस्य जानते हो ?

प्रजा ठीक से करती काम अपना,
तुम धर्मपूर्वक उनकी रक्षा करते,
धन-धान्य, अस्त्र-शस्त्र सब भरपूर,
न्यायाधीश उचित निर्णय करते ?

व्यर्थ गवाते न अपना समय तुम,
त्याग दिया चौदह राजदोषों[8] को,
जानते हो जानने वाली सब बातें,
विचार-विमर्श कर निर्णय करते हो ?

राजनीति से परिपूर्ण उपदेश सुन,
बोले भरत, मेरे किस काम के,
अपने कुल की मर्यादा छोड़ने वाला,
क्या करूँगा मैं, यह सब जान के ?

---

[8] चौदह राजदोष-नास्तिकता, असत्य भाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, सज्जनों की अनदेखी, आलस्य, इन्द्रियों की परवशता, मन्त्रियों की अवहेलना, अशुभ चिन्तकों या मूर्खों से परामर्श, निश्चित किये कार्यों में विलम्ब, रहस्यों को प्रकट कर देना, मंगल कृत्यों का त्याग, और सब शत्रुओं पर एक साथ आक्रमण ।

सनातन नियम यह हमारे कुल का,
बड़ा भाई छोड़ छोटा राजा नहीं होता,
हे राघव ! चलिए राज्याभिषेक करवा,
करें कल्याण आप हमारे कुल का ।

हे भाई ! जब मैं केकयदेश में था,
और आप चले आए थे वन में,
दुःख और शोक से सन्तप्त हो,
स्वर्गवास किया हमारे पिता ने ।

एकसप्तितमः सर्गः से सप्तसप्तितमः सर्गः

करुणापूर्ण मृत्यु का समाचार सुन,
भरत के मुख से महाराज दशरथ का,
आँखों से आँसू बहाते हुए बोले श्रीराम,
अब अयोध्या जाकर ही क्या करूँगा ?

कर न सका उनके अन्तिम दर्शन भी,
हे भरत ! तुम बहुत भाग्यशाली हो,
तुमने और शत्रुघ्न ने पिता के,
किए अन्त्येष्टि आदि संस्कार तो ।

सीता और लक्ष्मण भी यह सुन,
डूब गए शोक के सागर में,
आँखों से आँसू बहने लगे उनकी,
कुछ सूझ नहीं रहा उन्हें ।

उधर तीनों रानियों को आगे कर,
वशिष्ठजी भी पहुँच गए कुटी में,
श्रीराम की ऐसी दशा देखकर,
रोने लगीं शोकग्रस्त तीनों माताएँ ।

चरण स्पर्श किए तीनों माताओं के,
पहले श्रीराम और फिर सीता ने,
कृश और दीन वनवासी सीता को,
हृदय लगा लिया कौसल्या माता ने ।

चीर, जटा और मृगचर्म को देख,
धारण किये हुए थे जो भरत ने,
विस्मित हो पूछने लगे श्रीराम,
क्यों उन्हें धारण किया भरत ने ?

भरत ने कहा, महाराज दशरथ ने,
केकैयी की प्रेरणा से किया यह काम,
आपके वियोग से व्याकुल हो उन्होंने,
प्राण त्याग, किया स्वर्ग को प्रयाण ।

राज्य रूपी फल तो न मिला,
विधवा हो शोक मिला केकैयी को,
यद्दपि मैं हूँ केकैयी का ही पुत्र,
अपना अनन्य दास जानिए मुझको ।

प्रसन्न हो मुझ पर आप अपना,
राज्याभिषेक करवाएँ तुरन्त आज ही,
सभी अयोध्यावासी और माताएँ,
आयी हैं इसीलिए मेरे साथ ही ।

हे मानद ! ज्येष्ठानुक्रम अनुसार,
यह सारा ही राज्य है आपका,
उचित आपका राज्याभिषेक होना,
सब आपकी कर रहे प्रतीक्षा ।

मन्त्रियों सहित सिर झुकाकर मैं,
करता हूँ आपसे विनम्र प्रार्थना,
अपने भाई, दास और शिष्य पर,
राज्य स्वीकार कर करें कृपा ।

सिर झुका चरणों में भरत,
मन ही मन कर रहे विनती,
किसी तरह मान जाएँ श्रीराम,
समाप्त हो यह व्यथा उनकी ।

सब कुछ सुन तब श्रीराम ने कहा,
हे भरत ! मैं यह कैसे कर सकता,
कोई दोष नहीं दिखता मुझे तुममें,
उचित नहीं माता केकैयी की निन्दा ।

पिता आदि गुरुजन कर सकते,
जैसा चाहें पुत्रादि के साथ व्यवहार,
शिष्य, दास, स्त्री और पुत्र पर,
माना गया उनका पूर्ण अधिकार ।

चीर-वसन पहनाएँ या मृगछाला,
महाराज को है यह पूर्ण अधिकार,
वन में भेजें या राजकाज कराएँ,
जैसा चाहें करें हमसे व्यवहार ।

सन्तानों को करना चाहिए जैसा,
अपने पिता का आदर-सत्कार,
करना चाहिए उतना और वैसा ही,
अपनी माता का भी आदर-सत्कार ।

धर्मशीला माता और पिता ने जब,
दिया आदेश मुझे वन जाने का,
कैसे कर सकता हूँ उससे विपरीत,
उनके आदेश की यूँ कर अवज्ञा ?

हे भरत ! अयोध्या जाकर बैठो,
लोकप्रशंसित राज्यसिंहासन पर,
मैं दण्डकवन में वास करूँगा,
वल्कल वस्त्रों को धारण कर ।

वह रात बीती यूँ ही सोच-सोच में,
सुबह भरतजी फिर करने लगे निवेदन,
माता ने दिलवाया मुझे जो राज्य,
वह राज्य मैं आपको करता हूँ अर्पण ।

चल नहीं सकता गधा घोड़े सा,
कोई पक्षी गरुड़ सा उड़ नहीं सकता,
वैसे ही, हे महिपाल श्रीराम ! मैं,
आपसी सामर्थ्य पा नहीं सकता ।

अनुमोदन किया सभी ने भरत का,
कहा बहुत सुन्दर, साधुवाद भरत को,
लेकिन राम ने तरह-तरह से समझा,
विवश कर दिया पुन: भरत को ।

बोले, यह मनुष्य परतन्त्र है,
कर्मभोग भोगने मारा-मारा फिरता,
संयोग-वियोग, जीवन और मृत्यु,
यह क्रम सदा यूँ ही चलता रहता ।

लहरें मिला देतीं काष्ठ के टुकड़े,
पर फिर से वे अलग हो जाते,
ऐसे ही भाई-बन्धु, धन-सम्पत्ति,
मिल जाते और फिर बिछुड़ जाते ।

क्योंकि मृत्यु तो अवश्यम्भावी है,
कोई मृत्यु को टाल नहीं सकता,
फिर क्या लाभ शोक करने से,
शोक करने से कुछ हो नहीं सकता ।

स्वस्थ होकर और शोक त्याग,
राज्य करो अयोध्या में जाकर,
आज्ञा है पिताजी की भी ऐसी ही,
आज्ञा मानूँगा मैं भी यहाँ रहकर ।

फिर युक्तियुक्त वचन बोले भरत,
कौन आपके तुल्य होगा जगत में,
न दु:ख दुखी कर सकता आपको,
न अधिक हर्षित होते आप हर्ष में ।

क्षत्रियों का सर्वप्रथम धर्म यही है,
राज्याभिषेक करा प्रजा पालन करें,
क्यों छोड़ना चाहते गृहस्थ आश्रम,
सर्वोत्तम बताते हैं धर्मज्ञ जिसे ।

विद्या, पद और अवस्था में मैं,
सब तरह से हूँ छोटा आपसे,
फिर ऐसे में आपके होते हुए मैं,
पृथ्वी का पालन कर सकता कैसे ?

मन्त्रों के ज्ञाता वैदिक मन्त्रों से,
यहीं आपका राज्याभिषेक करें,
अभिषिक्त होकर आप हमारे साथ,
अयोध्या में राज करने को चलें ।

मेरी माता के लोकापवाद को,
मेरी बात मान आप धो डालिए,
जैसे परमात्मा करता जीवों पर दया,
आप भी मुझ पर कृपा कीजिए ।

अवहेलना कर मेरी प्रार्थना की,
यदि जाते हैं आप दूसरे वन में,
तो मैं भी आपके साथ ही साथ,
पीछे-पीछे चलूँगा उसी वन में ।

यद्दपि रो-रोकर, गिड़गिड़ाकर भरत,
बार-बार मना रहे थे राम को,
पर राम कटिबद्ध थे आज्ञापालन में,
न माने अयोध्या लौट आने को ।

भरतजी कुछ कहना चाहते थे,
लेकिन श्रीराम ने कहा उनसे,
विवाह के समय पिताजी ने,
एक प्रतिज्ञा की थी केकयराज से ।

कहा था केकैयी को जो पुत्र होगा,
राज्यसिंहासन पर वो आसीन होगा,
देवासुर संग्राम के समय भी उन्होंने,
केकैयी को दो वर देने को कहा था ।

तुम्हारी माता ने स्मरण करा,
पिताजी से उन दोनों वरों को माँगा,
एक से माँगा तुम्हारे लिए राज्य,
दुसरे से मेरे लिए वनवास माँगा ।

पिताजी के वचन सिद्ध करने,
चला आया हूँ मैं निर्जन वन में,
हे राजेन्द्र ! वचन का मान रखने,
आप भी अयोध्या जा शासन करें ।

पुत्र पिता का उद्धार करता है,
पुत् नामक दुखदायी नरक से,
इसीलिए उसे कहा जाता है पुत्र,
रक्षा करता पिता की सब प्रकार से ।

अयोध्या लौट करो प्रजा पालन,
मैं भी दण्डकारण्य प्रवेश करूँगा,
हे भरत ! तुम बनो मनुष्यों के राजा,
मैं वन के पशुओं का राजा बनूँगा ।

तभी जाबालि नामक एक ब्राह्मण ने,
कहे धर्मविरुद्ध ये वचन राम से,
बुद्धिमान और मनस्वी होते हुए भी,
आप निरर्थक बातें कर रहे कैसे ?

अकेला जन्मता और मरता प्राणी,
कोई किसी का नहीं जगत में,
माता-पिता, घर, धन-सम्पत्ति सब,
कुछ ही समय के साथी जगत में ।

फिर क्यों पिता का समृद्ध राज्य छोड़,
हे नरोत्तम ! जाना चाह रहे हो वन में,
प्रतीक्षा कर रही है अयोध्या आपकी,
सिंहासन ग्रहण कर प्रजा का पालन करें ।

तब श्रीराम बोले अमल योग्य नहीं,
आपने कही जो शास्त्र विरुद्ध बात,
मर्यादारहित, शास्त्र विरुद्ध आचरण से,
सज्जनों को सम्मान नहीं होता प्राप्त ।

कुलीन, अकुलीन, वीर, पवित्र, अपवित्र,
चरित्र ही करता निर्णय मनुष्य का,
आपका सुझाया आचरण करने से,
वेदविरुद्ध, विधिहीन कर्मदोष लगेगा ।

यदि राजा ही हो जाए स्वच्छन्दचारी,
देखा-देखी लोग भी हो जाएँगे वैसे,
सत्य और दयालुता राजा का सदाचार,
सारा संसार टिका हुआ है सत्य से ।

सत्य ही ईश्वर है संसार में,
सत्य ही है निवास लक्ष्मी का,
सुख-शान्ति और एश्वर्य का मूल,
सत्य ही संसार में सबसे बड़ा ।

लोभ, मोह, अज्ञान या क्रोधवश,
तोड़ नहीं सकता मैं मर्यादा,
पिताजी की आज्ञा पालन करना,
मुझ स्त्यप्रतिज्ञ की है मर्यादा ।

सत्य ही है सबसे बड़ा धर्म,
सत्य आधारशिला सभी गुणों की,
जो करते सत्य का अनुशीलन,
स्वर्ग भी याचना करता उनकी ।

आचरण करते जो धर्म का,
संगति करते सतपुरुषों की,
शुभ कर्मों में रहते तत्पर,
संसार पूजा करता है उनकी ।

क्रोधित हो दैन्यरहित श्रीराम ने,
कहे जाबालि से जब ये वचन,
तब जाबालि ने विनययुक्त हो,
कहे सत्य सम्मत आस्तिक वचन ।

बोले यह नहीं था मेरा अभिप्राय,
समयानुसार मैं कुछ भी कह जाता,
चाहता था आप वापस लौट जाएँ,
इसिलिए ही मैंने वैसा कहा था ।

क्रुद्ध देख श्रीराम को वशिष्ठजी,
कहने लगे आप ग्रहण करें राज्य,
तुम्हारा और तुम्हारे पिता का आचार्य,
तुम्हारे लिए मेरे वचन नहीं त्याज्य ।

मेरे वचनों का पालन करने से तुम,
सज्जनों के मार्ग से नहीं गिरोगे,
बन्धु-बान्धव, सभासदादि कह रहे,
क्या माता की भी अवज्ञा करोगे ?

हे सत्यव्रतधारी पराक्रमी राम ! देखो,
भरत याचना कर रहा है तुमसे,
तुम्हारा आत्मगौरव कम नहीं होगा,
याचना भरत की स्वीकार करने से ।

श्रीराम बोले माता-पिता के उपकार का,
सन्तान कभी प्रतिकार कर नहीं सकती,
पूज्य पिता ने दी जो आज्ञा मुझे,
वह कैसे भी मिथ्या हो नहीं सकती ।

सत्याग्रह करने की सोच भरत ने,
कहा सुमन्त्र से कि कुश बिछा दो,
सत्याग्रह करूँगा श्रीराम के प्रति,
जब तक प्रसन्न नहीं हो जाते वो ।

धनहीन ब्राह्मण[9] की भाँति मैं,
भोजन त्याग और मुँह ढककर,
श्रीरामजी के सामने धरना दे,
बैठा रहूँगा इस कुटी के द्वार पर ।

इस प्रकार भरत को बैठा देख,
पूछा राम ने ऐसा क्या किया मैंने,
ब्राह्मण ही यूँ बैठ सकता धरना दे,
उचित नहीं यह क्षत्रियों के लिए ।

राम को तुम समझाते क्यों नहीं,
बोले भरत, साथ ही बैठे लोगों से,
वे बोले आप ठीक कह रहे हैं,
पर दृढ़ प्रतिज्ञ राम से हम कहें कैसे ?

राम बोले, हे महाबाहो भरत ! उठो,
प्रायश्चित करो सत्याग्रह करने का,
आचमन कर स्पर्श करो मेरा तुम,
और अन्त करो इस विवाद का ।

श्रीराम के कहे अनुसार कर भरत,
बोले राज्य न माँगा मैंने पिता से,
न ही माता को दिया कोई परामर्श,
न ही सम्मति दी वनवास के लिए ।

पिताजी की आज्ञानुसार यदि,
आवश्यक ही है रहना वन में,
श्रीराम के प्रतिनिधि के रूप में,
चौदह वर्ष मैं रहूँगा वन में ।

अति विस्मित हुए राम यह सुन,
बोले, भरत तुम यह क्या कह रहे,
पिताजी ने जो किया जीवनकाल में,
हमारे अधिकार में नहीं बदलना उसे ।

अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए,
उचित नहीं बनाऊँ प्रतिनिधि किसी को,
केकैयी ने जो माँगा उचित है,
उचित ही है पिताजी ने किया जो ।

भरत सब तरह से हैं गुणवान,
कोई हानि नहीं ये करें राज,
वनवास पूरा कर, भाई के साथ,
स्वीकार करूँगा अयोध्या का राज ।

हे भरत ! माता ने जो वर माँगा,
मैंने किया है उस के अनुसार,
बचाओ पिताजी को मिथ्याभाषण से,
राज्य ग्रहण कर दूसरे वर अनुसार ।

अष्टसप्ततितम: सर्ग: से एकोनाशीतितम: सर्ग:

विस्मित हुए एकत्र ऋषिगण,
दोनों भाइयों का सुन संवाद,
करने लगे वे दोनों की प्रशंसा,
बोले, धन्य हैं दशरथ महाराज ।

---

[9] ऐसा ब्राह्मण जिसने ब्याज के लोभ में अपनी पूँजी किसी महाजन के पास रख दी हो लेकिन वो महाजन बेईमानी कर उसकी सम्पति हड़प जाए । ऐसे ब्राह्मण के पास सत्याग्रह के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रह जाता ।

कहा, कुलीन और चरित्रवान भरत,
यदि चाहते पिता सुखी हों स्वर्ग में,
तो जो कुछ कह रहे हैं श्रीराम,
सभी की भलाई उसे मानने में ।

राम के पक्ष का समर्थन देख,
कांप गया शरीर भरत का,
हाथ जोडकर बोले मैं अकेला,
अपननेआप को समर्थ न पाता ।

बन्धु, सैनिक, इष्ट-मित्र, शुभचिंतक,
अयोध्या के पुरवासी और जनपदवासी,
सब प्रतीक्षा करते आप के शासन की,
जैसे कृषक खेती के लिए मेघ की ।

ग्रहण करो इस राज्य को आप,
बिठला दो सिंहासन पर चाहो जिसे,
आप सम्पूर्ण लोक पालन में समर्थ,
कर सकते हैं आप जो चाहें वैसे ।

यह कह गिर पड़े चरणों में,
बारम्बार राम से कर रहे प्रार्थना,
उन्हें उठा गले से लगाया राम ने,
और करने लगे उनकी सराहना ।

बोले, मेरे वनवास के विरुद्ध,
और किसी को नियुक्त करने की,
यह उत्तम बुद्धि जो आई तुम में,
द्योतक तुम्हारे निष्णात होने की ।

बुद्धिमान मन्त्रियों से परामर्श कर,
सम्पूर्ण राज्य की करो सुव्यवस्था,
चाहे जो हो जाए अपनी प्रतिज्ञा,
मैं कदापि भंग कर नहीं सकता ।

स्नेह-वश या लोभवश दिलवाया,
तुम्हारी माता ने राज्य तुम्हें,
मत रखना इस बात को मन में,
सदा माता का मान देना उन्हें ।

श्रीराम के इस आदेश को सुन,
स्वर्णभूषित पादुकाएँ ली भरत ने,
बोले, इनमें अपने चरण रखिए,
योग-क्षेम प्रजा का वहन करेंगी ये ।

उन खडाऊँ पर आरूढ़ हो राम ने,
पैरों से उतार दे दिया भरत को,
भरत बोले मैं भी धारण करूँगा,
चौदह वर्ष चीर और जटा को ।

अपना जीवन निर्वाह करूँगा मैं,
केवल कन्दमूल और फल खाकर,
आपके आगमन की प्रतीक्षा करता,
बसूँगा मैं तब तक नगर के बाहर ।

राज्यसिंहासन पर रख पादुकाएँ,
शासन का मैं प्रबन्ध करूँगा,
एक दिन भी आपने यदि देर की,
मैं अग्नि में जल भस्म हो रहूँगा ।

'बहुत अच्छा', ऐसा कह राम ने,
गले लगाया भरत और शत्रुघ्न को,
बोले, रक्षा करना माता केकैयी की,
क्रोध न दिखाना कभी तुम उनको ।

शपथ दे अपनी और सीता की,
विदा किया श्रीराम ने उनको,
शत्रुघ्न सहित रथ पर सवार हो,
भरत चले, सिर रख खडाऊँ को ।

अयोध्या पहुँच रहने लगे भरत,
नगर से बाहर जा नन्दिग्राम में,
खडाऊँ को न्यास-धरोहर मान,
बड़े सम्मान सहित रखा उन्होंने ।

अशीतितम: सर्ग:

उधर वन में महसूस की राम ने,
ऋषियों में कुछ अरक्षित होने की भावना,
एक वृद्ध ऋषि बोले कारण इसका है,
राक्षसों द्वारा और अधिक सताये जाना ।

भयंकर, क्रूर और विकट रूप बना,
डराया करते हैं राक्षस ऋषियों को,
तरह-तरह से विघ्न डालकर यज्ञ में,
नष्ट कर दिया करते हैं यज्ञों को ।

हे राम ! वे दुष्ट राक्षस चाहते हैं,
हिंसा करना हम ऋषियों की,
इसलिए हम आश्रम छोडकर,
चले जाना चाहते हैं और कहीं ।

यहाँ से कुछ दूर ही स्थित है,
महर्षि अश्व का विचित्र तपोवन,
हम लोग वहीं जा आश्रय लेंगे,
चाहो तो तुम भी चलो तपोवन ।

यद्दपि समर्थ हो, हे राम ! तुम,
सब तरह अपनी रक्षा करने में,
लेकिन क्लेशदायी ही होगा तुम्हारा,
रुके रहना यहाँ इस वन में ।

अत्यन्त उत्सुक उन कुलपति को,
समझा-बुझा रोक सके न राम,
अनेक कारणों से वहाँ रुके रहना,
उचित नहीं है, सोचने लगे राम ।

परिजनों और नगरवासी आए थे वहाँ,
सो उनकी स्मृति वहाँ आती है उन्हें,
सेना के हाथी-घोड़ों ने छोड़ी गंदगी,
और वनस्पतियाँ नष्ट कर दी उन्होंने ।

वह आश्रम छोड़, सीता, राम, लक्ष्मण,
जा पहुँचे महर्षि अत्रि के आश्रम में,
आतिथ्य किया स्वयं ऋषि ने उनका,
और स्नेह सहित सान्त्वना दी उन्हें ।

अपनी पत्नी सती अनुसूया से कहा,
आदर-सत्कार करें वे सीता का,
सीताजी से प्रसन्न हो उन्होंने,
महत्त्व समझाया उन्हें पातिव्रत्य का ।

बोलीं, वन में रहे या नगर में,
सुख सम्पन्न हो या दुःख ग्रस्त,
हर हाल में पति सर्वप्रिय जिन्हें,
वे स्त्रियाँ पूज्य होतीं सर्वत्र ।

चाहे पति कठोर स्वभाव का हो,
चाहे पति कामी हो या दरिद्र हो,
लेकिन श्रेष्ठ स्वभाव वाली स्त्रियाँ,
परम देवता मानती हैं पति को ।

उनका अनुमोदन करती बोलीं सीताजी,
स्त्री के लिए पति ही होता गुरु उसका,
मेरे पति चरित्रहीन या दरिद्र भी होते,
तो भी प्रीतिपूर्वक मैं करती उनकी सेवा ।

फिर मेरे पति तो गुणवान हैं,
धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय और दयावान,
माता-पिता से प्रेम करने वाले,
मिलना कठिन कोई उनके समान ।

वन आते समय मेरी सास ने,
जो उपदेश दिया, मैं भूली नहीं,
विवाह के समय जो माँ ने कहा,
उसको भी मैं जरा सा भूली नहीं ।

आज आपने पुन: नवीन कर दिए,
वो सब उपदेश जो मुझे मिले,
प्रसन्न हो तब अनुसूयाजी ने कहा,
वर देना चाहती हूँ मैं सीता तुझे ।

आश्चर्यचकित हो गईं सीताजी,
अनुसूयाजी के यह वचन सुनकर,
फिर मन्द हास्य करती बोलीं,
सब मिल गया आपकी कृपा पाकर ।

और भी अधिक प्रसन्न होकर,
अनुसूयाजी ने उन्हें दिए उपहार,
दिव्य माला, वस्त्र-आभुषण आदि,
प्रेम से सीताजी ने किया स्वीकार ।

रात्रि बीता जब वे जाने लगे आगे,
तपस्वियों ने सावधान किया उनको,
राक्षस लोगों को मारकर खा जाते,
मार डालें आप उन राक्षसों को ।

इति अयोध्याकाण्डम्

अरण्यकाण्डम्

अरण्यकाण्डम्

प्रथम: सर्ग: से नवम: सर्ग:

वहाँ से चल राम दण्डकवन पहुँचे,
बहुत से ऋषियों के बने आश्रम,
पशु-पक्षी, फल-फूलादि से भरपूर,
वेदपाठ, हवन आदि करते ऋषिगण ।

आदर सहित सत्कार किया राम का,
कहा, वन में रहते पर प्रजा आपकी,
तप ही हमारा एकमात्र धन है,
करनी चाहिए आपको रक्षा हमारी ।

जब गहन वन में प्रविष्ट हुए राम,
सामना हुआ एक राक्षस से उनका,
विशालकाय, नरमांसभक्षी, भयंकर,
ले भागा सीता को गोद में उठा ।

कहने लगा तुम जटा-चीर धारी,
चल रहे हाथ में ले धनुष-बाण,
तपस्वियों सा वेश, पर स्त्री साथ में,
बस कुछ ही देर के तुम मेहमान ।

'विराध' नाम का राक्षस हूँ मैं,
शस्त्रधारी, खाता मांस मुनियों का,
यह सुन्दर नारी होगी मेरी भार्या,
तुम्हें मार, रक्तपान करूँगा तुम्हारा ।

उदास हो लक्ष्मण से बोले श्रीराम,
जनकनन्दिनी को दबोच रखा इसने,
पिता की मृत्यु हुई राज्य छिना,
उससे भी अधिक दुःखी किया इसने ।

क्रोधित हो, फुँकार मारते लक्ष्मणजी,
बोले, क्यों सन्तप्त हो रहे हैं आप,
इन्द्र के समान सब प्राणियों के राजा,
और मुझ सेवक के स्वामी हैं आप ।

अभी मार देता हूँ मैं इसको,
रक्तपान करेगी आज पृथ्वी इसका,
ऐसा कह लक्ष्मण ने पूछा उससे,
क्या प्रयोजन तुम्हारा यहाँ आने का ?

वह बोला, जय और शतह्रदा का पुत्र,
मैं विराध, तुम्हें कहता हूँ भाग जाओ,
मुझसे युद्ध तुम कर न सकोगे,
जिधर से आए, उधर ही लौट जाओ ।

यह सुन क्रोध में भर उठे राम,
किया प्रहार उस पर तीखे बाणों से,
सीता को वहीं छोड़कर वह भागा,
झपटा फिर त्रिशुल लिए हाथ में ।

काट दिया उसका त्रिशुल बाणों से,
फिर झपटे दोनों भाई तलवार लिए,
उन दोनों को अपनी बाहों में भर,
दौड़ पड़ा विराध उन्हें साथ लिए ।

राम, लक्ष्मण को यूँ ले जाते देख,
सीताजी करने लगीं घोर विलाप,
तुरन्त दोनों भाइयों ने राक्षस के,
तोड़ दिए अपने हाथों से हाथ ।

उठा-उठाकर उसे पटका भूमि पर,
मार-मारकर बुरा हाल किया उसका,
फिर भी उसके प्राण निकलते नहीं,
तप के कारण शस्त्र से नहीं मरता ।

तब लक्ष्मण को कहा गड्ढा खोदे,
पैर से राम दबाए रहे गला उसका,
गधे से विशाल कानों वाले विराध को,
उस गड्ढे में फेंक दिया दफना ।

छोड़ वह दुर्गम और कष्टप्रद वन,
पहुँचे आश्रम में ऋषि शरभंग के,
बोले, जाओ ऋषि सुतीक्ष्ण के पास,
वे आपके लिए सब प्रबंध कर देंगे ।

पर ठहरो थोड़ी देर, मैं जब तक,
केंचुली सा यह जीर्ण शरीर त्यागता,
ऐसा कह एक विशाल यज्ञ अग्नि में,
कूद ऋषि ने त्याग किया प्राणों का[10] ।

ऋषि शरभंग के प्राण-त्याग के बाद,
तपस्वियों ने आ कहा राम को,
इक्ष्वाकुकुल में प्रधान, पृथ्वी के स्वामी,
हमारे रक्षक हैं, हे राम ! आप तो ।

धर्मपूर्वक प्रजापालन जो करता,,
पाता वो अपनी प्रजा से सम्मान,
मुनियों का भी पुण्यफल पाता,
रक्षा जो करता प्राण समान ।

आपके जैसे रक्षक होते हुए भी,
मारे जा रहे हम अनाथों से,
देखिए मृत तपस्वियों का ढेर,
मार डाला जिन्हें राक्षसों ने ।

अब कष्ट सहन नहीं होते हमसे,
आए हैं हम आपकी शरण में,
हे राम ! शरणागतवत्सल हैं आप,
कृपा कर हमारी रक्षा करें ।

कहा राम ने, प्रार्थना न करें,
बल्कि दीजिए आप मुझे आज्ञा,
आप का आज्ञाकारी, युद्धक्षेत्र में,
करूँगा वध मैं दुष्ट राक्षसों का ।

अभय दान दे उन तपस्वियों को,
चले राम सुतीक्ष्णजी से मिलने,
अनेक गहरी नदियों को पारकर,
पहुँच गए वे उनके आश्रम में ।

महर्षि सुतीक्ष्णजी ने कहा राम से,
आपने यह आश्रम सनाथ कर दिया,
आपके दर्शन की अभिलाषा से मैंने,
अब तक ब्रह्मलोक प्रस्थान न किया ।

तदन्तर राम चल दिए आगे,
मार्ग में सीता लगीं उनसे कहने,
राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा कर,
लगे आप अधर्म का संचय करने ।

कहाँ शस्त्र और कहाँ वन,
तपस्वी का वेश धरा आपने,
निरपराध जीवों की हिंसा करना,
उचित नहीं लगता मेरे मन में ।

---

[10] ऋषि लोग अपने तप द्वारा मृत्युन्जय बन जाया करते थे । जब वे समझते कि उनका शरीर जीर्ण हो गया है तो इच्छानुसार अपना शरीर त्याग दिया करते थे । सिकन्दर भी जब भारत आया तो ऐसे किसी योगी की खोज में था । उसे एक ऐसे योगी मिले भी, जिन्होंने उसके सामने ही अग्नि में प्रविष्ट हो अपने शरीर का त्याग किया ।

फिर बोलीं, उपदेश नहीं दे रही आपको,
कहा स्त्रीस्वभाव सुलभ चपलतावश मैंने,
कौन आपको धर्मोपदेश दे सकता भला,
करें वही जो आप दोनों उचित समझें ।

उनको सम्बोधित कर कहा राम ने,
कुलीन होने का परिचय दिया तुमने,
ये बातें तुम्हारे कहने योग्य ही हैं,
स्नेहपूर्वक मेरे हित में कही तुमने ।

तुमने कहा क्षत्रियों का धनुर्धारण,
होता दुखियों का दुःख हरने को,
तपस्वियों ने मुझे रक्षक मान कहा,
राक्षसों से उनकी रक्षा करने को ।

उन ऋषियों के समक्ष की प्रतिज्ञा,
कैसे भी मैं मिथ्या कर नहीं सकता,
छोड़ सकता हूँ तुम्हें और लक्ष्मण को,
पर अपनी प्रतिज्ञा छोड़ नहीं सकता ।

हे वैदेही ! उनके कहे बिना ही,
करनी चाहिए मुझे रक्षा उनकी,
फिर मैंने तो प्रतिज्ञा की है,
कि मैं करूँगा रक्षा उनकी ।

स्नेह और सौहार्द से तुमने कही,
बहुत संतुष्ट हूँ मैं उन बातों से,
इनमें तुम्हारा प्रेम झलकता,
बिना प्रेम कौन कहता किसी से ?

उस वन में थे बहुत से आश्रम,
राम रुके उनमें बारी-बारी से,
इस तरह दस वर्ष बीतने के बाद,
गए सुतीक्ष्णजी के पास लौट के ।

अगस्त्यजी का पता पूछ उनसे,
चले महर्षि अगस्त्यजी से मिलने,
अनेक रमणीक वन, मेघ तुल्य पर्वत,
नदियाँ और सरोवर दिखे मार्ग में ।

अगस्त्यजी के सुरम्य आश्रम में जा,
ऋषि चरणों में प्रणाम किया राम ने,
महर्षि भी चाहते थे उनसे मिलना,
प्रेमसहित आदर-सत्कार किया उन्होंने ।

वैष्णव नामक दिव्य धनुष दिया,
ब्रह्माजी का दिया अमोघ बाण भी,
इन्द्र का खाली न होने वाला तरकस,
और एक स्वर्ण-विभूषित तलवार भी ।

बोले तुम्हार लिए हैं ये दिव्य शस्त्र,
विजय दिलाएँगे संग्राम में तुमको,
धारण करो तुम ये शस्त्र, हे राम !
जैसे इन्द्र ने धारण किया वज्र को ।

पूछी राम ने कोई ऐसी जगह,
जहाँ कष्ट न हो जल का,
हरे-भरे वृक्षों से युक्त हो,
सीता को आश्रय मिले सुख का ।

महर्षि बोले दो योजन दूरी पर,
पञ्चवटी नाम का है एक ऐसा स्थान,
पूरा करो पिता को दिया वचन,
अपने लिए आश्रम का कर निर्माण ।

दशम: सर्ग: से विंश: सर्ग:

पञ्चवटी की ओर जाते हुए राम ने,
गृध्रराज जटायु[11] को देखा मार्ग में,
राक्षस समझ उनसे पूछने पर बोले,
समझो मुझे मित्र पिता का अपने।

कुल, जन्म, नाम आदि बताकर,
बतलाया श्येनी का पुत्र हूँ मैं,
यदि आप चाहेंगे तो आपकी,
वनवास में सहायता करूँगा मैं ।

दुर्गम बहुत है यह वन, हे तात !
वन्य पशु और राक्षस यहाँ रहते,
तुम और लक्ष्मण दूर होंगे जब,
रक्षा करूँगा सीता की तुम्हारे पीछे ।

चले जटायु को साथ लेकर,
मार्ग में करते वध राक्षसों का,
सुविधा युक्त एक स्थान देख,
वहाँ आश्रम बनाने का सोचा ।

लक्ष्मण बनाने लगे वहाँ आश्रम,
मिट्टी की ऊँची दीवारें खड़ी कर,
लम्बे-लम्बे बाँसों के खम्बों पर,
खड़ी पर्णशाला की छत टिककर ।

हेमन्त ऋतु में स्नान के लिए राम,
गए एक दिन गोदावरी के तट पर,
सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ थे,
लक्ष्मण बोले राम को सम्बोधित कर ।

आपका प्रिय हेमन्त ऋतु आ गया,
पृथ्वी दिख रही अन्न से हरी-भरी,
जल छूने को भी जी नहीं चाहता,
अग्नि से तापने को चाहता है जी ।

नवसस्येष्टि यज्ञपूर्वक सज्जन लोग,
निष्पाप हुए गुरुजनों का सत्कार कर,
चन्द्रमा का प्रकाश पड़ने लगा धूमिल,
अच्छे लगते भगवान भुवन भास्कर ।

धर्मात्मा भरत तप कर रहे अयोध्या में,
सोते पृथ्वी पर इस शीत काल में,
लाड़ से पले-बढे सुकुमार भरत कैसे,
स्नान करते होंगे सरयू नदी में ?

राम ने कहा यद्दपि मैं दृढ़-प्रतिज्ञ हूँ,
कि चौदह वर्ष वन में ही रहूँगा मैं,
तथापि भरत के स्नेह को याद कर,
बाल-बुद्धि और व्याकुल हो जाता मैं ।

जब वे लौट आए पर्णशाला को,
और कर रहे थे परस्पर वार्तलाप,
स्त्री-सुलभ शालीनता से विहीन,
एक राक्षसी आ पहुँची अकस्मात ।

रावण की बहन शूर्पनखा थी वो,
मोहित हो राम पर हो गयी आसक्त,
राम सब तरह से सुन्दर, सुडौल,
शूर्पनखा थी उनके बिल्कुल उलट ।

---

[11] जटायु के लिए महर्षि वाल्मीकि ने सीताजी के मुख से उन्हें आर्य सम्बोधित कराया है, जिससे विदित होता है कि वे गीध नहीं थे । उन्होंने अपने आप को महाराज दशरथ का मित्र बताया था । 'ताण्डय ब्राह्मण' में विद्वानों को पक्षी और मूर्खों को पक्षरहित कहा गया है ।

बोली स्त्री सहित, धनुष-बाण ले,
क्यों आए हो तुम इस प्रदेश में,
अपना सब वृतान्त उसे बतलाना,
शुरू किया सरल स्वभाव राम ने ।

अपने बारे में बता, पूछा उससे,
बोली, शूर्पनखा नामक राक्षसी हूँ मैं,
इच्छानुसार रूप धर, इस वन में,
सबको संत्रस्त करते, घूमती हूँ मैं ।

राक्षसों का राजा महापराक्रमी रावण,
विश्रवा मुनि का पुत्र है मेरा भाई,
कुम्भकर्ण जो बहुत सोनेवाला है,
और धर्मात्मा विभीषण भी है मेरा भाई।

खर और दूषण भी भाई हैं मेरे,
संसार में प्रसिद्द, पराक्रम वाले,
देखते ही तुम पर आसक्त हो,
आई हूँ तुमको अपना पति बनाने ।

क्या करोगे तुम इस सीता को रख,
विकराल, कुरूप, तुम्हारे योग्य नहीं,
चिरकाल के लिए मेरे पति बनो,
तुम्हारे लिए सब दृष्टि से सही ।

इस कुरूपा, कुलटा मानुसी सीता को,
खा जाऊँगी मैं तुम्हारे भाई सहित,
शूर्पनखा के इस प्रकार कहने पर,
राम ने कहा, मैं तो हूँ विवाहित ।

फिर बोले यह सीता मुझे प्रिय है,
सौत का होना तुम्हें दुखदायी होगा,
यह लक्ष्मण मेरा छोटा भाई है,
सुन्दर, तेजस्वी, पराक्रमी और युवा ।

इस समय यह बिना स्त्री के है,
तुम्हारे लिए अनुकूल पति होगा,
पति बना सेवा करो तुम इसकी,
सौत का भी तुम्हें दुःख न होगा ।

तुरन्त लक्ष्मण के पास जा वह बोली,
आपके योग्य हूँ, बन सकती हूँ पत्नी,
फिर विचरण करो इस दण्डकवन में,
कहीं किसी की कोई रोक-टोक नहीं ।

मुस्कुराकर चतुराई से बोले लक्ष्मण,
कहा, मैं तो दास हूँ अपने भाई का,
क्या करोगी दास की पत्नी बनकर,
तुम तो वरन करो मेरे बड़े भाई का ।

जब तू उनसे विवाह कर लेगी,
त्याग देंगे वे अपनी स्त्री को,
बन जाएँगे वे तुम्हारे अनुरागी,
भूल जाएँगे उस पहली स्त्री को ।

लक्ष्मण की बात को सत्य ही मान,
शूर्पनखा ने राम के पास जा कहा,
अपनी इस कुरूपा स्त्री के कारण,
सम्मान न करते मुझसी सुन्दरी का ।

तो देखो, अभी तुम्हारे ही सामने,
खा जाती हूँ मैं इस मानुसी को,
फिर सीता रहित होकर तुम राम,
मान ही लोगे मेरे कहे हुए को ।

सीता की ओर उसे झपटती देख,
राम बोले ऐसों से करते नहीं परिहास,
हे लक्ष्मण ! तुरन्त कोई उपाय सोचो,
इस राक्षसी को आने दो न पास ।

इसका अंग-भंग करके तुम,
इसे और भी कुरूप बना दो,
तुरन्त लक्ष्मण ने तलवार निकाल,
काट दिया उसके नाक, कान[12] को ।

चीत्कार करती भाग गई शूर्पनखा,
जिधर से आई उसी वन को,
अपने भाई खर के पास जा,
भूमि पर गिरी धड़ाम सी वो ।

क्रोधित खर के पूछने पर शूर्पनखा ने,
आँसू बहाते बतलाया अपने भाई को,
बोली, दशरथ के पुत्र, राम, लक्ष्मण,
नहीं जानती देवता या मनुष्य हैं वो ?

उनके साथ है सुन्दर अलंकृत स्त्री,
जिसके कहने से मेरी हुई दुर्दशा,
चाहती करना उन दोनों का रक्तपान,
यही मेरी है सबसे बड़ी इच्छा ।

चौदह राक्षस भेज शूर्पनखा के साथ,
कहा, शीघ्र आओ तुम मारकर उन्हें,
राम ने बरजा, कहा लौट जाओ,
पर राम का कहा न भाया उन्हें ।

उन चौदह राक्षसों ने एक साथ,
किया शस्त्र से आक्रमण राम पर,
बिना फर वाले बाणों से राम ने,
मार गिराया उन सबको भूमि पर ।

लौटकर उलाहना देने लगी शूर्पनखा,
बोली, बस तू तो डींगे ही मारता,
यदि युद्ध नहीं कर सकता राम से,
दण्डकारण्य छोड़ कहीं ओर चला जा ।

यूँ धिक्कारे जाने पर बोला खर,
आज मैं राम को मारकर ही रहूँगा,
मेरे कुठारे से अधमरे हुए राम को,
आज तुझे रक्तपान करने को दूँगा ।

फिर उसने सेनापति दूषण से कहा,
चौदह सहस्त्र राक्षसों को करे तैयार,
भीषण सेना और दूषण को साथ ले,
लड़ने चला खर, रथ पर सवार ।

राक्षसों की उस विशाल सेना को देख,
राम ने कहा, हे लक्ष्मण ! तुम जाओ,
सीता को ले जा बैठो किसी कन्दरा में,
तुम्हें मेरे चरणों की शपथ, तुम जाओ ।

कवच पहने, धनुषधारी राम को देख,
राम के सामने आ खड़ा हुआ खर,
उसके छोड़े बाणों का प्रतिकार करते,
राम ने तीक्ष्ण बाण छोड़े उस पर ।

सवारों सहित हाथी, घोड़ों को मार,
तीतर-बीतर कर दी सेना राम ने,
क्रुद्ध हो सेना सहित दौड़ा दूषण,
राक्षस वृक्ष और शिलाएँ लगे बरसाने ।

---

[12] उस समय दूसरे की इच्छा के विपरीत प्रतिलोम विवाह (अर्थात अपने से उच्च वर्ण वाले व्यक्ति से) के इच्छुक पुरुष के लिए वध का दण्ड और स्त्री के लिए नाक-कान काटने के दण्ड का विधान था । (याज्ञवल्क्य स्मृति 02/289)

शूर्पनखा का अंग-भंग

ऐसा भीषण युद्ध किया राम ने,
इतनी फुर्ती से उन्होंने तीर चलाए,
कब तरकस से निकाला, कब छोड़ा,
राक्षस बाण चलाते उन्हें देख न पाए ।

अनगिनत राक्षस गिरते एक साथ,
उनके शवों से ढक गई रणभूमि,
शत्रुन्जय राम के प्रहार असह्य देख,
बचे राक्षस छोड़कर भागे रणभूमि ।

अपनी सेना को मारे जाते देखकर,
दूषण ने चलाए वज्रतुल्य बाण,
क्षुर नामक अस्त्र चलाया राम ने,
धनुष काट, लिए घोड़ों के प्राण ।

सारथि का सिर काट गिराया,
और तीन बाण मारे दूषण को,
परिघ उठा अपनी ओर आता देख,
काट डाला उन्होंने उसके हाथों को ।

भूमि पर गिर मर गया दूषण,
तब खर ने कहा बची सेना से,
मार डालो राम को किसी तरह,
बच के न जाने पाए यहाँ से ।

पर राम ने मार डाला उन सबको,
अकेले ही कर दिया उनका संहार,
खर से तब राक्षस त्रिशिरा बोला,
आप रुकें, मुझे करने दें प्रहार ।

घोर युद्ध हुआ राम और त्रिशिरा में,
मानों सिंह और गजराज लड़ रहे,
राम के माथे पर मारे बाण त्रिशिरा ने,
बोले, लगता है फूल स्पर्श कर रहे ।

चौदह बाण मार उसकी छाती पर,
मार गिराया उसके रथ के घोड़ों को,
जब वह रथ से कूदने लगा, राम ने,
ह्रदय विदीर्ण कर मार डाला उसको ।

दूषण और त्रिशिरा को मरा देख,
भयभीत हो गया खर राम से,
पर समीप पहुँच, काट डाला धनुष,
राम ने उसे पकड़ा था जहाँ से ।

महर्षि अगस्त्य प्रदत्त वैष्णव धनुष ले,
तब श्रीराम युद्ध करने लगे खर से,
खर के तीरों से आहत, क्रुद्ध राम ने,
वार किया खर पर तेरह बाणों से ।

एक बाण से रथ के जुए को,
और चार बाणों से चारो घोड़ों को,
छटे बाण से काटा सिर सारथि का,
तीन से काटा रथ के बाँसों को ।

दो बाण मारे रथ की धुरी पर,
बारहवें से खर का धनुष काटा,
तेरहवें बाण का लक्ष्य बना खर,
रथ छोड़, गदा ले खड़ा हो गया ।

उसे खड़ा देख कहा राम ने,
निन्दित और पापकर्म किए हैं तूने,
ऐसा व्यक्ति चाहे जो कुछ भी हो,
बचेगा नहीं, क्या सुना न तूने ?

अपने घर में घुसते विषधर सा,
मार देना चाहिए उस अत्याचारी को,
निरपराध तपस्वियों को मारा तूने,
क्या उसका दण्ड मिलेगा न तुझको ?

समय आने पर जीवों को मिलता,
पापों का फल जो किए उन्होंने,
पापाचारियों का अन्त करने को ही,
मुझे वन भेजा महाराज दशरथ ने ।

क्रोध में भरकर तब खर बोला,
क्यों स्वयं प्रशंसा अपनी कर रहे,
तेजस्वी, बलवान और पराक्रमी वीर,
अपनी प्रशंसा कभी स्वयं न करते ।

कह सकता हूँ मैं भी बहुत कुछ,
पर मैं अब कुछ कहना नहीं चाहता,
समय निकल गया कहने-सुनने में,
तो सूर्यास्त होते युद्ध रुक जाएगा ।

ऐसा कह अत्यन्त क्रुद्ध हो खर ने,
प्रहार किया अपनी भीषण गदा से,
बीच में ही छिन्न-भिन्न कर दिया,
अनेक बाण चला राम ने उसे ।

फिर भर्त्सना करने लगे राम उसकी,
खर ने भी राम को कहा अभिमानी,
एक साल वृक्ष उखाड़ राम पर फेंका,
जिसे राम ने काट डाला बीच में ही ।

फिर छेद डाला खर को बाणों से,
व्याकुल हो गया वो इस आघात से,
बहते रक्त की गन्ध से मतवाला हो,
राम की ओर छलांग लगाई उसने ।

जरा पीछे हट, जगह बना राम ने,
एक तेजस्वी बाण मारा खर को,
उससे निकली अग्नि से दग्ध हो,
पृथ्वी पर गिर मर गया वो ।

प्रसन्न हो ऋषि और तपस्वी बोले,
हमारा यह काम कर दिया तुमने,
फिर बोले पुष्पवर्षा कर राम पर,
राक्षसों से निर्भय कर दिया आपने।

विंश: सर्ग: एवं एकविंश: सर्ग:

खर-दूषण आदि के मारे जाने के बाद,
अकम्पन नामक राक्षस गया लंका को,
रावण को सब वृतान्त कह सुनाया,
दोनों भाइयों ने ये किया, कहा उसको ।

रावण बोला जनस्थान जाऊँगा मैं,
तो राम के बारे में बताया उसने,
चरित्रवान, बलवान, पुरुषार्थी हैं राम,
कठिन उनसे जीतना है, रण में ।

सब देव और असुर मिलकर भी,
रण में मार नहीं सकते राम को,
उसे मारने का केवल एक उपाय,
सुनो, बताता हूँ वो उपाय तुमको ।

श्रीराम की एक धर्मपत्नी है सीता,
अति सुन्दर, युवती, अलंकृत, आभूषित,
कोई स्त्री उसके तुल्य नहीं जग में,
सदा राम और लक्ष्मण से रक्षित ।

तुम उस महावन में जाकर,
हर लाओ उसे छल-कपट से,
राम वियोग में प्राण तज देगा,
तुम्हारा काम बन जाएगा ऐसे ।

सुबह होते ही चल दिया रावण,
आरूढ़ हो खच्चरों से जुते रथ पर,
ताटका-पुत्र मारीच के आश्रम,
पहुँचा रावण लम्बी यात्रा कर ।

आदर-सत्कार कर रावण का उसने,
पूछा उससे उसके आने का कारण,
बताया मेरे आरक्षक मार दिए राम ने,
करना चाहता उसकी स्त्री का हरण ।

यह सुनकर मारीच ने पूछा,
शुभचिंतक बना है कौन शत्रु ऐसा,
परिचय दिया तुम्हें सीता का,
और परामर्श दिया उसके हरण का ?

राक्षसवंश की कीर्ति और गौरव,
कौन नष्ट करवाना चाहता तुमसे,
विषधर सर्प के मुख से विषदन्त,
कौन उखड़वाना चाहता तुमसे ?

उस बलशाली, पराक्रमी राम से,
जीत सकता है भला कौन रण में,
उससे लड़ना तो बात दूर की,
कौन खड़ा रह सकता उसके सामने ?

सो हे लंकेश्वर ! आप लौट जाएँ,
सुख से लंका में विहार करें,
प्रसन्न हो रहें राम पत्नी के संग,
आप सुमार्ग के पथगामी हो रहें ।

द्वाविंश: सर्ग: से सप्तविंश: सर्ग:

उधर खर, दूषण आदि के साथ,
चौदह सहस्त्र राक्षसों को मरा देख,
बहुत अधिक घबराकर शूर्पनखा ने,
रावण की लंका में किया प्रवेश ।

जाकर धिक्कारा रावण को उसने,
बोली, मतवाला हो असावधान हो रहा,
राक्षसजाति पर घोर संकट छाया है,
पर तू इस सबसे बेखबर हो रहा ।

चञ्चल है तू, यत्न न करता,
दूतों से भी तू लेता न खबर,
फिर तू कैसे राज्य कर सकता,
देव-दानव आदि का विरोध कर ?

गुप्तचर, कोष और राजनीति,
जिन राजाओं के अधीन न होती,
साधारण जन बन वे रह जाते,
कीर्ति उनकी मिट्टी हो रहती ।

खर, दूषण सहित सहस्त्रों राक्षस,
मार डाले हैं अकेले ही राम ने,
जनस्थान का विध्वंस कर डाला,
आतंक रहित किया दण्डकवन उसने ।

पराधीन और मतवाला होकर तू,
राज्य पर आया संकट नहीं समझता,
प्रतिकार न करता जो समय रहते,
शीघ्र ही वो राजा नष्ट हो रहता ।

बहुत क्रोधित हो उठा रावण,
पूछने लगा कैसा और कौन है राम,
क्यों आया इस दुर्गम दण्डकवन में,
कितना पराक्रमी और बलवान है राम ?

बताने लगी शूर्पनखा रावण को,
दशरथनन्दन दीर्घबाहु है राम,
वल्कल चीर, मृगचर्म धारण किये,
विशाल नेत्र, कामदेव सा है राम ।

अत्यन्त पराक्रमी और महातेजस्वी,
उसका छोटा भाई है लक्ष्मण,
गुणों में अपने भाई के ही तुल्य,
राम का भक्त, अनुरक्त है लक्ष्मण ।

पूर्णिमा के चन्द्रमा से मुख वाली,
पति की हितैषी है उसकी पत्नी,
अद्‌वितीय सौन्दर्य है उस सीता का,
उस जैसी मैंने कोई देखी नहीं ।

तुम्हारी भार्या होने योग्य है वह,
तुम योग्य हो उसके पति होने के,
काट दिए मेरे नाक कान इस कारण,
तू ही लिया उसको हरण करके ।

उद्‌द्‌वेलित हो गया रावण, यह सुन,
किया परामर्श मन्त्रियों से उसने,
फिर अपने कर्त्तव्य का विचार कर,
जाने का किया निश्चय उसने ।

उसकी इच्छानुसार चलने वाले,
काञ्चन-रथ पर हो सवार रावण,
चल दिया समुद्र के उस पार,
रुका देख एक रमणीय पुण्याश्रम ।

मारीच राक्षस का था वह आश्रम,
जटाधारी, नियत आहार करने वाला,
रावण का आदर-सत्कार कर पूछा,
क्यों इतनी शीघ्र हुआ पुन: आना ?

बोला रावण, बहुत दुखी हूँ मैं,
राम ने मार डाले कितने ही राक्षस,
खर-दूषण, त्रिशिरा भी मार डाले,
दण्डकवन से भगा दिए सब राक्षस ।

पिता ने क्रुद्‌ध होकर जिस राम को,
निकाल दिया राजधानी से बाहर,
उसी राम ने इतनी बड़ी सेना को,
मार डाला भाई के साथ मिलकर ।

वह चरित्रहीन, अजितेन्द्रिय, कर्कश,
लोभी, मूर्ख और तीक्ष्ण स्वभाव वाला है,
धर्म का त्याग कर वह पापात्मा सदा,
प्राणियों का अहित किया करता है ।

उसने बिना कारण ही काट दिए,
नाक और कान मेरी बहन के,
सहायता चाहता हूँ कि उसकी भार्या,
सीता को उठा लाऊँ मैं बदले में ।

पराक्रम, युद्‌ध और मान-मर्दन में,
कोई नहीं है सानी तुम्हारा,
उपाय बतलाने और माया में,
मुझको है तुम्हारा ही सहारा ।

चाँदी के बिन्दुओं से चित्रित,
सोने का मृग बन जाना तुम,
उनके आश्रम के पास विचर,
सीता का मन हर लेना तुम ।

पति राम और देवर लक्ष्मण से,
कहेगी सीता हिरण पकड़ लाने को,
जब वे दोनों दूर चले गए होंगे,
हरण कर ले जाऊँगा मैं सीता को ।

राम का नाम सुन उसके मुख से,
भय से सूख गया मुँह मारीच का,
चतुरता से बात बनाकर मारीच ने,
महाप्राज्ञ राक्षसराज रावण से कहा ।

हे राजन ! संसार में सुलभ होते,
मुँह पर मीठा-मीठा बोलने वाले,
दुर्लभ हैं लेकिन सच्चे हितकारी,
सत्य, पर अप्रिय, बात कहनेवाले ।

गुप्तचरों की नियुक्ति का अभाव,
और चञ्चल स्वभाव के कारण,
नहीं जानते आप राम के विषय में,
बैर लेना चाहते उनसे बिना कारण ।

न तो राम को पिता ने निकाला,
न ही मर्यादाहीन किसी प्रकार है राम,
न लोभी, न दुराचारी, न आततायी,
न ही क्षत्रिय कुलकलंक है राम ।

न मूर्ख, न कठोर हृदय है,
न ही अजितेन्द्रिय है राम,
तुमने जो अनर्गल प्रलाप किया,
उसका पात्र नहीं है राम ।

राम धर्म की साक्षात् मूर्ति है,
साधु स्वभाव और सत्य पराक्रमी,
जैसे इन्द्र देवताओं के राजा,
राम सम्पूर्ण लोक का स्वामी ।

अपने पातिव्रत्य से स्वयं रक्षित,
सुरक्षित राम के तत्त्वाधान में,
सूर्य की प्रभा सदृश सीता के,
हरण का सोचा भी कैसे तुमने ?

असहय बाणरुपी ज्वाला से युक्त,
धनुष और तलवार हैं जिसके ईंधन,
उस रामरुपी अग्नि में कूदकर,
क्यों करना चाहते प्राणों का हवन ?

राम के समक्ष पड़ संग्राम में,
जीत नहीं सकते तुम रण राम से,
मत करो तुम विरोध राम का,
भोगना चाहते यदि राज्य सुख से ।

पातक परस्त्रीगमन से बढ़कर,
कुछ और नहीं, हे रावण ! जग में,
सो छोड़ दो यह कुत्सित विचार,
और सुख से रहो अपनी लंका में ।

ज्यों औषधि ग्रहण नहीं करता,
मृत्यु के मुख में पड़ा बीमार,
युक्तियुक्त और शिक्षाप्रद वचनों को,
रावण ने भी न किया स्वीकार ।

उल्टे कहने लगा मारीच को,
निष्फल है तेरा मुझे कुछ कहना,
पक्का निश्चय कर लिया है मैंने,
निश्चित है सीता का हरण करना ।

पूछी नहीं है तेरी राय मैंने,
चाहता हूँ तू करे सहायता मेरी,
यदि तू इससे इनकार करता है,
निश्चित जान आज मृत्यु तेरी ।

राजाज्ञा सा जब कहा रावण ने,
मारीच ने भी कहा निर्भय होकर,
किस पापी ने तुझे उकसाया,
अपने हाथों अपना विनाश कर ?

क्रूर-स्वभाव, निर्बुद्धि, अजितेन्द्रिय,
जिन राक्षसों का राजा हो तुझसा,
अवश्य ही वे नष्ट हो जाएँगे,
फिर कौन उनकी कर सकता रक्षा ?

मैं तो मारा ही जाऊँगा इसमें,
शोक नहीं है मुझे इस बात का,
तुम सेना सहित मारे जाओगे,
मुझे तो शोक है बस इसका ।

मारीच का मृग रूप में सीता को लुभाना

मुझे मार राम मार डालेगा तुम्हें भी,
मुझे तो मरना ही है दोनों तरह से,
लेकिन कृतकृत्य समझूँगा स्वयं को,
यदि मारा गया राम के हाथों से ।

निश्चित है मेरा मारा जाना,
जैसे ही सामने जाऊँगा राम के,
सीता का हरण करने से तुम भी,
मरा ही समझो, साथ सेना के ।

रावण के भय से दीन मारीच,
बोला, चलो, करो जैसा तुम चाहो,
प्रसन्न हो रावण ने कहा उससे,
आओ मेरे साथ रथ पर सवार हो ।

जाते हुए मार्ग में उन दोनों ने,
अनेक नदी, पर्वत, नगरों को देखा,
दण्डकवन में पहुँच कर उन्होंने,
श्रीराम के उस आश्रम को देखा ।

अद्‌भुत मृग का रूप धारण कर,
घूमने लगा मारीच निकट द्‌वार के,
पुष्प तोड़ने के लिए आयी सीता ने,
देखा वह मृग, कभी देखा न जैसे ।

पुकार कर बुलाया राम-लक्ष्मण को,
लक्ष्मण शंकित हुए उसे देखकर,
बोले यह मारीच राक्षस हो सकता,
होता न ऐसा मृग जग में कहीं पर ।

लेकिन हतबुद्‌धि सीता ने रोक,
कहा राम से इसे पकड़ लाओ,
मन बहलाएगा यह मृग हमारा,
तुम जीवित ही इसे पकड़ लाओ ।

ले जाएँगे अयोध्या वनवास के बाद,
बढ़ायेगा शोभा यह रनिवास की,
अगर ये मृग मारा भी गया तो,
बना लूँगी मैं चटाई मृगछाल की ।

सीता की बात सुन, और उसे देख,
राम भी मुग्ध हो गए मृग पर,
लक्ष्मण से कहा अस्त्र-शस्त्र ले,
सीता की रक्षा करो सावधान होकर ।

फिर सोने की मूठ वाली तलवार,
और धनुष-बाण, तरकस ले साथ,
चले राम उस मृग को पकड़ने,
जो लगाए हुए था इसी की आस ।

धनुषधारी राम को आता देखकर,
वह मृग राम को दौड़ाने लगा,
कभी वो कुलाचें भरने लगता,
कभी निकट आ लुभाने लगा ।

कभी छिपता, कभी सामने आता,
ले गया वो बहुत दूर राम को,
यूँ छले जाने से क्रुद्‌ध राम ने,
निश्चय किया मारने का उसको ।

रोष में भर बड़े वेग से राम ने,
शत्रु-विदारक एक बाण निकाला,
धनुष पर चढ़ा, प्रत्यंचा खींचकर,
उस मृग पर उन्होंने चला डाला ।

बाण लगने के आघात से उसने,
पृथ्वी पर गिर भयंकर नाद किया,
और मरते समय उस मृग ने,
अपना कृत्रिम शरीर भी त्याग दिया ।

रावण का आदेश स्मरण कर उसने,
हा सीता ! हा लक्ष्मण ! कह पुकारा,
सीता भ्रमित हो जाए इसलिए उसने,
राम ही के स्वर का लिया सहारा ।

आशंकित हो गए राम उसे सुन,
सो शीघ्रता से लौटने लगे राम,
उधर वह आर्तनाद सुन सीता,
सोचने लगीं संकट में हैं राम ।

लक्ष्मण से कहा वो देखे जाकर,
पर लक्ष्मण नहीं गए आश्रम से,
तब सीताजी ने क्रुद्ध हो कहा,
मित्र के रूप में हो शत्रु के जैसे ।

इस विषम परिस्थिति में भी तुम,
जा नहीं रहे हो भाई को बचाने,
राम की विपत्ति प्रिय लग रही,
लोभ मुझे हथियाने का मन में ?

आँसू भरी शोकाविष्ट सीता से,
लक्ष्मण बोले, अजेय हैं श्रीराम,
तीनों लोकों में कोई ऐसा नहीं,
जिससे भयभीत हो सकते राम ।

उस मृग को मार राम लौटते होंगे,
यह आर्तनाद अवश्य है मायावी,
मुझे रक्षा करने को कह गए,
तुम्हें छोड़ नहीं सकता मैं अकेली ।

तब कुछ कठोर वचन बोले सीता ने,
दोष ही दोष दिखने लगे लक्ष्मण में,
बोलीं भरत के साथ मिल गया तू,
मैं प्राण दे दूँगी अभी तेरे सामने ।

लक्ष्मण बोले आप मेरी पूज्या हैं,
मैं उत्तर नहीं दे सकता हूँ आपको,
तपाये हुए बाणों से वचन आपके,
कर रहे हैं बिद्ध मेरे कानों को ।

जाने की मेरी इच्छा नहीं है,
परवश हूँ पर दुराग्रह से तुम्हारे,
वन के देवता तुम्हारी रक्षा करें,
भाई संग लौट दर्शन करूँ तुम्हारे ।

अष्टविंश: सर्ग: से एकत्रिंश: सर्ग:

समीप ही छिपा हुआ रावण,
तुरन्त सन्यासी बन आ गया,
वेदमन्त्रों का उच्चारण करते,
सीता को भरमाने लग गया ।

पूछने पर सीता ने रावण को,
बतला दिया वृतान्त अब तक का,
विवाह से लेकर वनवास तक,
सीता ने कह डाला जो घटा ।

बोलीं, यदि करना चाहते विश्राम,
तो आप थोड़ी देर यहाँ ठहरें,
वन से कन्द-मूल आदि लेकर,
आते ही होंगे अभी पति मेरे ।

तब कठोर शब्दों में बोला रावण,
राक्षसों का राजा रावण हूँ मैं,
तीनों लोक हैं आतंकित मुझसे,
पर तेरे लिए यहाँ आया हूँ मैं ।

बहुत स्त्रियाँ हरण कर रखी मैंने,
उन सबकी पटरानी बन रहो तुम,
समुद्र से घिरी, पर्वत चोटी पर बनी,
मेरी लंका नगरी में आकर रहो तुम ।

तरह-तरह का प्रलोभन दिया उसने,
पर सीता ने तिरस्कार कर कहा उसे,
अनुगामिनी अपने यशस्वी पति की,
तू छू तक भी नहीं सकता है मुझे ।

लगता है स्वप्न देख रहा है तू,
सिंह के मुँह में हाथ देना चाहता,
उठाना चाहता मन्दराचल पर्वत को,
या हलाहल विष पीकर जीना चाहता ?

जो अन्तर सिंह और स्यार में,
एक क्षुद्र नदी और विशाल सागर में,
ऐसा ही अन्तर तेरे और राम के बीच ,
जैसा अन्तर काँजी और अमृत में ।

जो अन्तर गरुड़ और कौवे में है,
जो अन्तर जलकाक और मोर में,
सारस और गिद्ध में जो अन्तर,
वैसा ही दाशरथि श्रीराम और तुझमें ।

इन्द्र के समान अमित प्रभावशाली,
और हाथ में धनुष लिए श्रीराम के रहते,
यदि तू मुझे हर के भी ले गया तो,
तेरी हालत होगी घी निगली मक्खी जैसे ।

यह सुन रावण हाँकने लगा डींगे,
बोला, इन्द्रादि भाग जाते देख मुझे,
मेरे साथ चल, एश्वर्य को भोग,
फिर राम भी न याद आएगा तुझे ।

राज्य से च्युत, मन्द बुद्धि, तपस्वी,
क्या करेगी रहकर उस राम के पास,
मेरा तिरस्कार कर वैसे ही पछताएगी,
जैसे उर्वशी पुरूरवा को मारकर लात ।

वह साधारण सा राम रण में,
समान नहीं है मेरी ऊँगली के भी,
तेरे भाग्य से ही यहाँ आया हूँ,
स्वीकार कर मुझे, चल साथ अभी ।

तब क्रोधित हो सीता ने कहा,
कुबेर का भाई और ऐसे काम,
वे सभी राक्षस मारे जाएँगे,
जिनका राजा तुझसा दुष्ट बेलगाम ।

इन्द्र की पत्नी शची को हर,
भले ही कोई रह जाए जीवित,
पर श्रीराम की पत्नी, मुझे हर,
कैसे कोई रह सकता जीवित ?

यह देख की सीता न मानेगी,
जबरन हर लिया उसने सीता को,
बालों को पकड़, रथ में बैठा,
चल दिया उसे साथ ले लंका को ।

हे राम ! हे राम ! पुकारती सीता,
रो-रोकर जोर से चिल्लाने लगी,
बार-बार राम-लक्ष्मण को बुलाती,
वो करुणापूर्वक विलाप करने लगी ।

तभी पेड़ों के मध्य जटायु को देख,
बोली, यह रावण हरण कर रहा मेरा,
कदाचित तुम न रोक सको रावण को,
राम-लक्ष्मण को बता देना हाल मेरा ।

औंघते हुए जटायु ने आर्त्तनाद सुन,
रावण को सीता को ले जाते देखा,
बोला, ऐसा करना उचित नहीं तुम्हें,
बल्कि करनी चाहिए स्त्रियों की रक्षा ।

त्याग दो इस नीच बुद्धि को,
करना नहीं चाहिए निन्दित कर्म,
लोग भी राजा का अनुसरण करते,
उसे तो करने चाहिएँ धर्ममय कर्म ।

जब तुम्हारे अधिकार क्षेत्र में,
किया न राम ने कोई अपराध,
तब क्यों कर रहे हो तुम,
राम के प्रति यह घोर अपराध ?

आक्रमणकारी अनाचारी खर को,
राम ने मार कोई अपराध न किया,
फिर राम के अग्नितुल्य नेत्रों से,
क्यों भस्म होने का यह काम किया ?

जिसके करने से कोई पुण्य न हो,
न कीर्ति न यश प्राप्त होता,
कोई भाग्यहीन ही करता ऐसे काम,
जिनसे केवल कष्ट ही होता ।

यद्दपि मैं बूढ़ा और तुम युवा हो,
रथ पर सवार, धनुष लिए हो,
पर यूँ सीता को ले जा न सकोगे,
जब तक मेरा श्वास चलता हो ।

झपट पड़ा जटायु पर रावण,
लड़ते रहे दोनों एक मुहूर्त तक,
अन्त में मरणासन्न सा जटायु,
गिर पड़ा घायल हो पृथ्वी पर ।

चल दिया रावण आकाश-मार्ग से,
सीता कोसती रही उसे बारम्बार,
बोली बाइज्जत मुझे वापस छोड़ आ,
वरना राम-लक्ष्मण तुझे देंगे मार ।

रावण द्वारा ले जाती हुई सीता ने,
जो देख रही थी किसी सहायक को,
कुछ दूर एक पर्वत-शिखर पर,
बैठे हुए देखा पाँच वानरश्रेष्ठों को ।

अपने रेशमी वस्त्र में बाँध सीता ने,
गिरा दिए कुछ आभूषण उनके पास,
उनके अपहरण का सन्देश राम तक,
पहुँच पाएगा यूँ, इसकी कर आस ।

जान सका न रावण इसको,
पम्पा को लाँघ पहुँचा लंका,
प्रवेश कर अन्त:पुर में अपने,
सीता को भी उसने वहीं रखा ।

द्वात्रिंश: सर्ग: एवं त्रयन्सित्रस: सर्ग:

आठ महाबली राक्षसों को भेजा,
जाकर जनस्थान मार डालें राम को,
फिर राक्षसियों से घिरी सीता को,
जबरन ही दिखाया अपने महल को ।

अनेक गृह बने उस विशाल महल में,
जड़े हुए जिसमें रत्न अनेक प्रकार के,
हाथीदाँत, सोना, चाँदी, स्फटिकमणि,
लगे हुए उसमें इनके मनोहर खम्भे ।

सीता का मन लुभाने के लिए,
रावण करने लगा बल का बखान,
बोला, क्या करगी तू लेकर राम को,
त्रिलोकी में नहीं कोई मेरे समान ।

असम्भव है राम का लंका में आना,
कल्पना भी वो इसकी कर नहीं सकता,
करो इस विशाल राज्य का तुम पालन,
दास बन रहेंगे सब राक्षस और देवता ।

रोने लगीं सीता मुख ढाँप कर,
रावण बोला, मत लज्जित हो तुम,
होने वाला जो राक्षस-विवाह तुमसे,
उसे शास्त्र सम्मत समझो तुम ।

शीघ्र प्रसन्न हो जा अब मुझसे,
मैं हूँ तेरा वशवर्ती दास,
ऐसी बातें कर रावण ने समझा,
सीता अब रहेगी उसके पास ।

सीता ने एक तिनका बीच में रख,
निर्भय होकर रावण से कहा,
हे राक्षसाधम ! काल के वश होकर,
तू मेरा अपमान कर रहा ।

जिस प्रकार पवित्र यज्ञवेदी को,
चाण्डाल स्पर्श कर नहीं सकता,
वैसे ही मुझ राम की पत्नी,
सीता को तू छू तक नहीं सकता ।

मेरे इस निश्चेष्ट शरीर को,
बाँधो या फिर तुम खा डालो,
मोह नहीं मुझे जीवन का,
चाहे मुझे तुम मार ही डालो ।

सीता को आतंकित करने को रावण,
बोला, बारह महीने हैं तेरे पास,
फिर भी अगर तू न मानी तो,
बनेगी तू मेरे भोजन का ग्रास ।

फिर उपस्थित राक्षसियों से बोला,
ले जाओ इसे तुम अशोक वाटिका,
डरा-धमकाकर या सान्त्वना दे,
जैसे भी हरो, हरो गर्व इसका ।

चतुन्सित्रंश: सर्ग: से अष्टात्रिंश: सर्ग:

उधर मृगरुपी मारीच को मारकर,
राम शीघ्र ही लौटे आश्रम को वापस,
सोच रहे मेरे कण्ठ का स्वर सुन,
कोई परिस्थिति आ न गई हो विकट ।

लक्ष्मण स्वयं या सीता के कहने पर,
आयेगा सीता को अकेली छोडकर,
लगता है सीता का वध करना चाहते,
दुष्ट राक्षस लोग सब मिलकर ।

मार्ग में उदास लक्ष्मण को देख,
बोले, छोड़ आए सीता को अकेला,
उचित नहीं किया यह तुमने,
क्या इससे कल्याण सीता का होगा ?

हे वीर ! कोई संदेह नहीं मुझे,
मार डाला या खा लिया होगा उसे,
अत्यन्त दुखी हो लक्ष्मण ने बताया,
कैसे विवश कर दिया गया उसे ।

हा सीते ! हा लक्ष्मण ! मुझे बचाओ,
सुनी आपकी यह पुकार सीता ने,
भावविह्वल हो, रोते हुए, बारम्बार,
जाने को प्रेरित किया मुझे उन्होंने ।

समझाया मैंने, यह आपका स्वर नहीं,
संसार में आपको कोई जीत नहीं सकता,
तब आपके स्नेहवश कटु वचन बोलीं,
प्रवेश हो गया मेरे मन में पाप का ।

बोले राम, यह अच्छा न किया,
कटु वचन सुन, तुम चले आए,
खिन्न कर रहा तुम्हारा आचरण,
मेरी आज्ञा न मान तुम चले आए ।

आश्रम पहुँच उसे सूना देखकर,
राम बारम्बार विलाप कर रोने लगे,
कहीं भी न पाकर सीता को राम,
पर्वत, नदी, नाले, ढूँढते फिरने लगे ।

पूछ रहे फूल-पत्तों, लता-वृक्षों से,
कहाँ गयी उनकी प्राण-वल्लभा सीता,
कह रहे अशोक वृक्ष से लिपटकर,
तू शोक हरने वाला, मेरा शोक मिटा ।

अति सन्तप्त हो कहने लगे राम,
मुझसा पापी न कोई होगा जग में,
पूर्वजन्म में किए होंगे यथेष्ट पाप,
एक के बाद एक दुःख पा रहा मैं ।

धैर्य बंधाते हुए उन्हें बोले लक्ष्मण,
उत्साह-पूर्वक खोज कीजिए सीता की,
उत्साही मनुष्य इस दुनिया में,
किसी भी परिस्थिति में न होते दुखी ।

पूछने पर मृगों का संकेत देख,
बोले राम ये कुछ चाहते हैं कहना,
मुँह उठाए दक्षिण को जाते देख उन्हें,
लक्ष्मण बोले, उचित दक्षिण को चलना ।

मार्ग में दिखा राक्षस का पद-चिन्ह,
साथ ही पीछा की जाती हुई सीता का,
उनको देखते आगे बढ़ने पर उन्होंने,
टूटे धनुष, तरकस, रथ आदि को देखा ।

थोड़े और आगे जाने पर राम ने,
भूमि पर रक्तरंजित जटायु को देखा,
सीता का भक्षक समझ जटायु को,
राम ने सोचा उसका वध करने का ।

अपनी ओर बढ़ते देख राम को,
जटायु बोला तुम खोज रहे जिसको,
रावण उसका हरण कर ले गया,
उसके साथ ही मेंरे प्राणों को ।

मैंने सामना किया रावण का,
रथ तोड़ गिराया भूमि पर उसे,
उसके टूटे धनुष और बाण हैं ये,
पर रोक नहीं सका मैं उसे ।

युद्ध करते-करते मेरे थकने पर,
काट दिए मेरे कन्धे रावण ने,
सीता को ले गया आकाश-मार्ग से,
मुझे मारना उचित न तुम्हें ।

दोगुणा हो गया दुःख राम का,
लगा लिया जटायु को हृदय से,
अपने भाग्य को कोसने लगे राम,
मेरे ही कारण हो रहा सब ऐसे ।

पूछने पर जटायु ने बताया,
दक्षिण की ओर ले गया रावण,
फिर त्याग दिए प्राण उसने,
राम ने किया उनका अग्नि-दहन ।

दोनों भाई चले सीता को खोजते,
पहुँचे वे आश्रम मतंग ऋषि के,
पहाड़ी पर विशाल कन्दरा को देखा,
पाताल सी गहरी, भरी अन्धकार से ।

उसमें एक भयंकर राक्षसी रहती थी,
पकड़ लिया लक्ष्मण को उसने,
क्रुद्ध हो अपनी तलवार से उसका,
अंग-भंग कर दिया लक्ष्मण ने ।

अभी वे वन में खोज ही रहे थे,
एक विकराल राक्षस आ गया सामने,
और अपनी विशाल भुजाएँ फैलाकर,
दोनों भाइयों को पकड़ लिया उसने ।

'कबन्ध' नाम था उस राक्षस का,
विवश हो गए दोनों उसकी पकड़ में,
राम तो व्यथित हुए नहीं लेकिन,
लक्ष्मण को विचलित कर दिया इसने ।

लक्ष्मण बोले आप मुझे इसे सौंपकर,
चले जाइए स्वयं सीता को खोजने,
लक्ष्मण को कहा कि अधीर न हो,
और लगे उचित मौक़ा वो ताकने ।

अवसर मिलते ही दोनों भाइयों ने,
एक एक भुजा काट दी उसकी,
लहुलुहान हो भूमि पर गिर पड़ा,
बड़ी दीन दशा हो गयी उसकी ।

पूछने लगा तब वह उन दोनों से,
कौन हैं वो, वहाँ किस काम से आए,
परिचय दे, सब वृतान्त बतलाकर,
पूछा वो कुछ जानता हो तो बताए ।

बोला, हे राम ! सीता कैसे मिलेगी,
सुनो, उपाय बताता हूँ तुम्हें उसका,
किसी भी कार्य को सिद्ध करने,
विज्ञजन प्रयोग करते छह युक्तियाँ ।

पहले उपाय 'सन्धि' का आश्रय ले,
मित्रता करो वक्ष्यमान[13] व्यक्ति से,
उसके सम्बन्ध में बतलाता हूँ तुमको,
सुग्रीव वानर है वो, मिलो उससे ।

बाली ने क्रुद्ध हो, अपमानित कर,
निकाल दिया उसे राज्य से अपने,
पम्पा किनारे, ऋष्यमूक पर्वत पर,
चार वानरों संग लगा वो रहने ।

वह वानरों का राजा सुग्रीव है,
बुद्धिमान, तेजस्वी और बलशाली,
मित्रता कर सहायता करेगा,
सीता को खोजने में वो तुम्हारी ।

चल दिए पश्चिम में, पम्पा की ओर,
शबरी का आश्रम स्थित था वहाँ पर,
प्रणाम कर तपस्विनी शबरी ने कहा,
फलादि रखे आपके लिए एकत्र कर ।

सफल तो हुई तुम्हारी गुरु-शुश्रुसा,
राम ने पूछा तो कहा शबरी ने,
सार्थक हुआ मेरा सेवा-तपस्या करना,
सफल मनोरथ हो गयी आज मैं ।

पुरानी देह त्यागने की इच्छा से,
अनुमति ली राम की उसने,
तुरन्त अग्नि में प्रविष्ट होकर,
ब्रह्मलोक प्रस्थान किया उसने ।

इति अरण्यकाण्डम्

---

[13] वक्ष्यमान-ऐसा व्यक्ति जो तुम्हें उसके बारे में बता सके ।

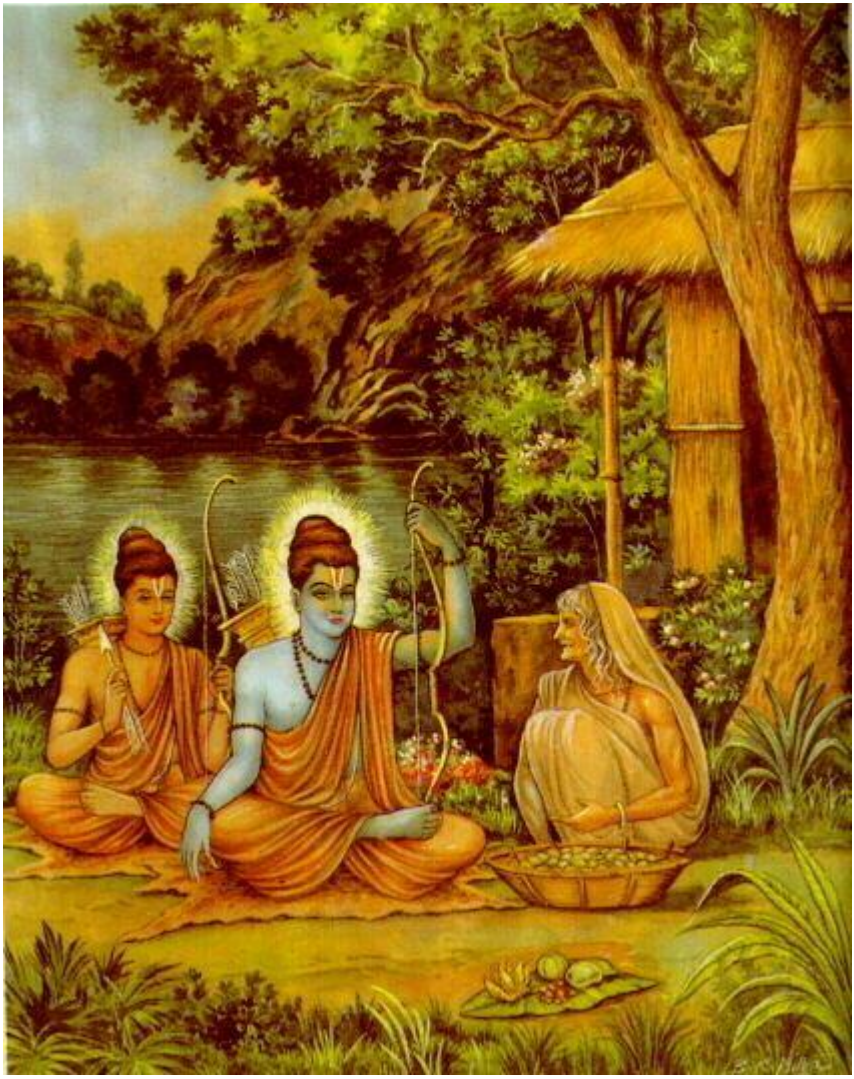

शबरी से भेंट

अथ किष्किन्धाकाण्डम्

अथ किष्किन्धाकाण्डम्

प्रथम: सर्ग: से पञ्चम: सर्ग:

रमणीय पम्पा सरोवर के पास पहुँच,
राम को सीता का स्मरण हो आया,
विकल हो विलाप करने लगे राम,
भरत का कष्ट भी याद हो आया ।

बोले, वसन्त ऋतु की यह सेना,
मेरा वियोगजन्य शोक बढ़ा रही,
सीता बिन मेरा जीना व्यर्थ है,
वो भी मेरा वियोग सह रही ।

व्याकुल हो रहा सीता को देखे बिना,
क्या कहूँगा माँ से अयोध्या लौटकर,
हे लक्ष्मण ! तुम लौट जाओ अयोध्या,
क्या करूँगा मैं अब और जीकर ?

अनाथों सा विलाप करते देख उन्हें,
लक्ष्मण बोले, धैर्य धरें, त्याग दें शोक,
संयोग के साथ ही वियोग होता है,
वियोग के बाद अवश्य होगा संयोग ।

छोड़ दीजिए आप वियोगजन्य दुःख,
छोड़ दीजिए आप अत्यधिक स्नेह भी,
क्योंकि अत्यधिक स्नेहयुक्त होने से,
जल जाती तेल में पड़ी गीली बाती भी ।

अब चाहे पाताल चला जाए रावण,
या किसी कन्दरा में जा छिपे,
उसका मरना तो अब निश्चित है,
बच नहीं सकता चाहे कुछ भी करे ।

हे भाई ! स्वस्थ हो जाइए आप,
त्याग दीजिए दीनता और कायरता,
धैर्य धारण कर उद्योग कीजिए,
उद्योग के बिना मिलती न सफलता ।

उत्साह में बड़ा बल होता है,
कोई बल नहीं उत्साह से बढ़कर,
सीताजी को अवश्य ही पा लेंगे,
हम भी आश्रय उत्साह का लेकर ।

महात्मा और कृतविद्य होकर भी,
क्यों पहचानते नहीं अपने स्वरूप को,
इस शोक को त्याग कर आप,
दूर फेंकिए इस मोहजन्य वृत्ति को ।

लक्ष्मण के यूँ उद्बोधन करने पर,
शोक और मोह त्याग दिया राम ने,
फिर स्थिरचित्त हो, घूम-घूमकर,
उस पम्पा सरोवर को लगे देखने ।

अस्त्र-शस्त्र धारण किए उन्हें देख,
बहुत भय लगा सुग्रीव को मन में,
मन्त्रियों से कहा, बाली के भेजे,
आए हैं ये उसके दूत वल्कल में ।

तब डरे हुए और आशंकित सुग्रीव से,
वाणी-विशारद हनुमान ने कहा,
हे वानरराज ! मन के डर का नहीं,
परिचय दीजिए स्थिर बुद्धि का ।

इन दीर्घबाहु, धनुर्धारियों को देख,
बोले सुग्रीव, किसे भय न लगेगा,
उचित नहीं सहसा विश्वास करना,
हमें इनके विषय में जानना पड़ेगा ।

जाकर साधारण वेश में हनुमान,
हाव-भाव आदि देख पता लगाओ,
कौन हैं ये, क्या प्रयोजन इनका,
पता लगाकर शीघ्र लौट आओ ।

तब हनुमान ऋष्यमूक से उतर,
चले उधर जहाँ थे राम-लक्ष्मण,
अपने वानरवेश का परित्याग कर,
एक याचक का वेश कर धारण ।

हनुमानजी राम-लक्ष्मण के समीप जा,
प्रणाम कर, प्रशंसा करने लगे उनकी,
राजर्षि सदृश देवताओं के समान आप,
कठोर व्रतधारी, वल्कलचीर तपस्वी ।

नेत्र कमल के समान आपके,
वीर, किए हुए जटामण्डल धारण,
कौन हैं आप समान आकृति वाले,
क्या देवलोक से हुआ आगमन ?

क्या स्वेच्छा से सूर्य और चन्द्रमा,
उतर आए हैं इस धराधाम पर,
या विशाल वक्षवाले मनुष्य रूप में,
उतर आए हैं देवता पृथ्वी पर ?

सिंह के समान हैं कन्धे आपके,
महा उत्साही, मदमत्त वृषभों से,
आपकी भुजाएँ गदा सी सुदृढ़,
समर्थ पृथ्वी की रक्षा करने में ।

अद्‌भुत हैं आप दोनों के धनुष,
तरकस में भरे हुए तीक्ष्ण बाण,
दमकती तलवारें सुनहरी मूठों वाली,
कौन हैं आप, पूछ रहे हनुमान ।

फिर कहने लगे वे अपना प्रयोजन,
बोले, सुग्रीव नामक वानरों का मुखिया,
भाई ने निकाला उसे अपमानित कर,
दुखी हो वो मारा-मारा फिर रहा ।

उनका भेजा हुआ आया हूँ मैं,
उसके वानरों में मुख्य, हनुमान,
वे धर्मात्मा मैत्री चाहते हैं आपसे,
उनका मन्त्री, मैं पवन-पुत्र हनुमान ।

प्रसन्न हो राम बोले लक्ष्मण से,
जिनसे चाहता था मैं मैत्री करना,
उनका मन्त्री स्वयं आ गया है,
उचित यह प्रस्ताव स्वीकारना ।

हनुमान हैं उच्चकोटि के विद्‌वान,
इतनी परिष्कृत बातें हैं इनकी,
सम्भव नहीं बिना वेदाध्ययन के,
व्याकरण प्रवीण, कोई त्रुटि नहीं की ।

दोषरहित है इनकी भाव-भंगिमा,
संदेह-हीन, मधुर और संयत वाणी,
वश में कर ले प्रबल शत्रु को भी,
दूत को सफलता दिलाने वाली ।

तदन्तर लक्ष्मण बोले, हे विद्‌वन !
खोज रहे हैं हम भी उन्हीं को,
मैत्री करना चाहते हैं हम उनसे,
कीजिए वैसा ही जैसा चाहते वो ।

उनकी यह स्वीकारोक्ति सुन,
प्रसन्न हुए वानरश्रेष्ठ हनुमान,
उस दुर्गम वन में आने का कारण,
पूछने लगे उनसे हनुमान ।

हनुमान द्वारा राम-लक्ष्मण को सुग्रीव के पास ले जाना

श्रीराम और अपना परिचय देकर,
सब वृतान्त बताया लक्ष्मण ने उन्हें,
ऐसे ही श्रेष्ठ मित्र चाहते थे सुग्रीव,
बड़े प्रसन्न होंगे वो, कहा उन्होंने ।

राज्य से भ्रष्ट हैं वे सुग्रीव भी,
शत्रुता हो गयी है बाली के साथ,
छीन ली गई है उनकी स्त्री भी,
अवश्य ही देंगे वे आपका साथ ।

फिर पीठ पर चढ़ा दोनों भाइयों को,
ऋष्यमूक पर्वत ले गए हनुमान उन्हें,
सुग्रीव चले गए थे मलय पर्वत पर,
हनुमान ले आए राम के पास उन्हें ।

हस्तालिंग्न किया राम और सुग्रीव ने,
अग्नि की प्रदिक्षणा कर करी मैत्री,
तदन्तर सुग्रीव की व्यथा सुनकर,
प्रतिज्ञा राम ने की बाली के वध की ।

सुग्रीव बोले, सब सुना हनुमान से,
मैं सीताजी को अवश्य ढूँढ लाउँगा,
अवश्य ही वे जानकी ही होंगी जिनको,
वह राक्षस हरण कर ले जा रहा था ।

हा राम ! हा लक्ष्मण ! पुकारते,
छटपटा रही थीं नागिन के जैसे,
शिखर पर बैठे हम वानरों को देख,
आभूषणों को गिरा दिया था नीचे ।

उन आभूषणों को ले आए सुग्रीव,
भर आए नेत्र राम के देख उन्हें,
उतरीय और आभूषणों को दिखा,
लक्ष्मण से कहा, पहचानों इन्हें ।

उन कंकणों और कुण्डलों को देख,
लक्ष्मण बोले, मैं इन्हें नहीं पहचानता,
लेकिन पहचानता हूँ इन नूपुरों को,
जिन्हें नित्य चरणवन्दना करते देखा ।

किस दिशा में ले जाई गई सीता,
या वो दुष्ट राक्षस कहाँ रहता,
पूछा सुग्रीव से दीन हो राम ने,
संहार होगा जिस कारण उन सबका ।

षष्ठ: सर्ग: से अष्टम: सर्ग:

बोले सुग्रीव मैं कुछ नहीं जानता,
कौन है वो पापी राक्षस, कहाँ रहता,
लेकिन मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, हे राम !
सीता का अवश्य लगा लूँगा मैं पता ।

दीनता छोड़, धैर्य धारण करें आप,
धैर्यवान पुरुष कभी दुखी न होते,
स्वजन-वियोग, धननाश या भय हो,
हर संकट में बुद्धि से काम लेते ।

विपत्ति में दीनता का परिचय,
दिया करते हैं मूर्ख लोग ही,
वे शोकसागर में ऐसे डूब जाते,
जैसे जल में नौका भार से लदी ।

उपदेश नहीं दे रहा मैं आपको,
मेरी भी परिस्थिति है आपसी ही,
निभा रहा मैं कर्त्तव्य मित्रता का,
हे राम ! धैर्य धारण करें आप भी ।

स्वस्थ हो, स्वाभाविक मुद्रा में आ,
राम ने आलिंगन कर सुग्रीव को कहा,
हितैषी मित्र को जो करना चाहिए,
आपने उसके अनुकूल ही किया ।

फिर बोले, नि:संकोच हो कहो,
आप मुझसे क्या करवाना चाहते,
मिथ्या भाषण कभी किया, न करूँगा,
मैं करूँगा वो जो आप मुझसे चाहते ।

अपना राज्य क्या, स्वर्ग पा सकता,
बोले सुग्रीव, मैं सहायता से आपकी,
अपने आपको गौरवान्वित पा रहा,
हे राम ! मैं मित्रता से आपकी ।

मैं भी आपके योग्य मित्र हूँ,
ज्ञात हो जाएगा ये आपको भी,
आप जैसे महात्माओं की प्रीति,
कभी निष्फल नहीं हो रहती ।

मित्रता में मेरा-तेरा न होता,
परस्पर सहायक होते हैं मित्र,
इसीलिए मित्रता का ऋण चुकाने,
अपने प्राण भी त्याग देते मित्र ।

उचित कहा आपने, राम के कहने पर,
सुग्रीव बोले, मुझ पर कृपा कीजिए,
बाली से डर, अनाथ सा फिर रहा,
उसे मार मुझे निश्चिन्त कीजिए ।

मुस्कराते हुए तब कहा राम ने,
आज ही मैं मार डालूँगा बाली को,
पर तुम्हारी शत्रुता क्यों हुई उससे,
बतलाओ यथातथ्य सब मुझको ।

बतलाना शुरू किया सुग्रीव ने,
कहा, मेरा बड़ा भाई है बाली,
पिता उसका सम्मान करते थे,
मेरा भी आदरपात्र था बाली ।

पिता के बाद राज्य पाया उसने,
मैं सेवा करता था विनीत भाव से,
किसी स्त्री के कारण उसकी शत्रुता,
हो गयी दुन्दुभि के ज्येष्ठ पुत्र से ।

एक रात्रि किष्किन्धा में आकर,
ललकारने लगा वो दानव बाली को,
उसकी ललकार को सहन न कर,
बाली चल पड़ा उससे लड़ने को ।

रोका बहुत बाली को सबने,
पर रुका नहीं वो किसी के रोके,
तब मैं भी भातृस्नेह के कारण,
चल दिया बाली के पीछे-पीछे ।

हम दोनों को देख वो दानव,
भाग खड़ा हुआ बड़े वेग से,
चाँदनी में उसे भागते देख,
हम भी पीछे भागे तेजी से ।

इतने में घुस गया वो असुर,
घास-फूँस से ढके एक विवर में,
रुक गए हम उसके द्वार पर जा,
तब मुझसे रुकने को कहा बाली ने ।

बोला, यहीं द्वार पर रुको तुम,
जब तक लौटूँ मैं उसे मारकर,
मैं भी साथ चाहता था जाना,
पर रोक दिया मुझे शपथ देकर ।

पूरा एक दिन बीत गया यूँ ही,
विकल हो गया मैं अनिष्ट सोचकर,
नाना आशंकाएं उठने लगीं मन में,
पर खड़ा रहा मैं वहीं द्वार पर ।

बहुत समय बाद मैंने उस बिल से,
फेनसहित रक्त की धार बहती देखी,
सुना मैंने गरजते हुए असुरों का शोर,
पर बाली की वाणी सुनाई न दी ।

भाई को मार मुझे भी न मार दें,
यह सोचकर मैं विचलित हो गया,
एक बहुत बड़ी पाषाणशिला को ले,
मैंने उस बिल का द्वार ढक दिया ।

मरणानन्तर स्नानादि से निवृत्त हो,
लौट आया मैं किष्किन्धा नगरी को,
यद्दपि मैंने छिपाई मृत्यु की बात,
लेकिन मन्त्रियों ने जान लिया उसको ।

राजा बिना नगरी को देख उन्होंने,
राज्याभिषेक कर मुझे राजा बनाया,
न्यायपूर्वक राज्य चला रहा था मैं,
कि इसी बीच बाली लौट आया ।

मुझे राजा बना हुए देखकर,
बहुत क्रोधित हो गया बाली,
उसके हितकामना की दृष्टि से,
मैंने बहुत अनुनय-विनय करी ।

कहा मैं तो सेवक हूँ आपका,
आप हैं मुझ अनाथ के नाथ,
ये सब राजचिन्ह धारण कर,
राज्य कीजिए प्रसन्न हों आप ।

आपके अभाव में मन्त्रिमण्डल ने,
मुझे इस पद पर बिठला दिया था,
आपका राज्य आपको लौटा रहा हूँ,
जो आपकी धरोहर रूप मेरे पास था ।

बार-बार विनती करने पर भी,
उसका क्रोध घटा नहीं रत्ती भर,
छीनकर मेरी पत्नी को मुझसे,
निकाल दिया मुझे नगर से बाहर ।

दुखी हो आश्रय लिया है मैंने,
पर्वतों में श्रेष्ठ इस ऋष्यमूक पर,
बाली के आक्रमण से सुरक्षित है ये,
किसी कारण बाली आता न यहाँ पर ।

रक्षा कीजिए मुझ निरपराध की,
निर्भय कीजिए बाली को दण्ड देकर,
राम ने कहा, मेरे तीक्ष्ण अमोघ बाण,
बाली पर गिरेंगे तेजी से जाकर ।

तुम्हारी भार्या का हरण करने वाले,
बाली को जब तक देख नहीं लेता,
समझो तभी तक जीवित है वो,
मेरे बाणों से वो बच नहीं सकता ।

देख रहा हूँ शोकसागर में डूबा,
अपने समान ही आपको भी मैं,
पत्नी और राज्य दोनों मिलेंगे,
इस विपत्ति से आपको उबारूँगा मैं ।

बताने लगे सुग्रीव तब बाली का बल,
उखाड़ फेंका उसने विशाल वृक्षों को,
धकेल कर परे कर दिया था उसने,
कैलास से ऊँचे दीर्घकाय दुन्दुभि को ।

फिर दिखाए राम को सात साल वृक्ष,
शाखाएँ जिनकी थीं हर ओर विकसित,
कहा इनमें से किसी को भी हिलाकर,
बाली कर सकता है पत्तों से रहित ।

कहा, बता दिया मैंने बाली का बल,
कैसे मार सकेंगे उसे, अब जानें आप,
लक्ष्मणजी ने हँसकर पूछा उनसे,
क्या करें राम कि विश्वास करें आप ?

सुग्रीव ने कहा बाली ने बींधा है,
कई बार एक-एक कर इन वृक्षों को,
यदि राम किसी एक को भी भेद दें,
तो उन पर विश्वास हो जाएगा मुझको ।

नवम: सर्ग: से त्रयोदश: सर्ग:

भरोसा दिलाने के लिए राम ने,
धनुष पर किया एक बाण संधान,
प्रत्यंचा खींच दिशाओं को गुंजाते,
राम ने छोड़ा वृक्ष पर वह बाण ।

काट डाला उन सातों वृक्षों को,
फिर बाण ने उस पर्वत को फोड़ा,
प्रविष्ट हो गया पृथ्वी में जाकर,
वह बाण जिसे राम ने छोड़ा ।

विस्मित हो कहा सुग्रीव ने,
जीत सकते हैं आप स्वर्ग को,
बाली की तो बात ही क्या,
जीत सकते हैं आप इन्द्र को ।

वरुण और इन्द्र से आपको पा,
मेरे सब शोक नष्ट हो गए,
आज ही मारिए बाली को आप,
मुझे प्रसन्न और निर्भय कीजिए ।

प्रेरित किया सुग्रीव को उन्होंने,
किष्किन्धा जा बाली को ललकारे,
पास के वृक्षों में जा छिप गए,
राम, लक्ष्मण और बाकी सारे ।

घोर गर्जन करने लगा सुग्रीव,
बाली निकल आया क्रोध कर,
घोर तुमुल युद्ध हुआ दोनों में,
मार रहे दोनों आगे बढ़-बढ़कर ।

हाथ में धनुष-बाण लिए राम ने,
दोनों भाइयों को देखा ध्यान से,
अश्विनी-कुमारों के सदृश समान,
वे दोनों भाई उन्हें लग रहे थे ।

सो छोड़ा नहीं बाण राम ने,
सुग्रीव आहत हो भाग गया,
राम और लक्ष्मण पहुँचे पास,
तो बोला सुग्रीव मैं मारा गया ।

आपने अपना पराक्रम दिखा,
भेज दिया लड़ने को बाली से,
पर आपने उसे बाण न मारा,
खूब पिटवाया मुझको उससे ।

राम बोले कारण सुनो इसका,
तुम दोनों सब तरह हो एक समान,
ठीक से पहचान न पाने के कारण,
तुम पर चल सकता था बाण ।

फिर एक बार युद्ध करो तुम उससे,
पर कोई ऐसा चिन्ह धारण कर लो,
जिससे मैं तुम्हारी पहचान कर सकूँ,
और तुम्हें अकारण कोई क्षति न हो ।

फिर लक्ष्मण को कह उन्होंने,
एक गज-पुष्पी लता को उखड़वाया,
सुग्रीव की पहचान करने को,
उनके गले में उसे पहनवाया ।

माला पहन और आशवस्त हो,
सुग्रीव चले फिर बाली से लड़ने,
फिर एक बार उसे ललकारा,
फिर निकल आया बाली लड़ने ।

राजमहल से निकलते देख तारा ने,
कहा बाली को क्रोध त्याग दो,
अभी पिट, फिर लौट आया सुग्रीव,
यह शंकित कर रहा मेरे मन को ।

उसके अहंकार, व्यवहार और गर्जन से,
लगता इसके पीछे है कोई कारण,
अवश्य उसे कोई सहायता मिल रही,
इतना गरज रहा वो जिस कारण ।

अंगद ने बताया था मुझको,
ज्ञात हुआ है उसे गुप्तचरों से,
इक्ष्वाकु कुल में जन्में अजेय राम,
और लक्ष्मण साथी बने हैं उसके ।

शत्रुओं का मर्दन करने में,
राम है प्रलयाग्नि के समान,
दीन-दुखियों के एकमात्र सहारे,
साधु जनों के लिए वृक्ष समान ।

आर्तों के अवलम्बन, यशस्वी, ज्ञानी,
पिता की आज्ञा पालन करने वाले,
उचित नहीं उन राम से विरोध,
मान लीजिए मेरे वचन हित वाले ।

दे दीजिए युवराज पद सुग्रीव को,
मत उससे अब वैर-विरोध करो,
मैं तो यह भी चाहती हूँ आप,
श्रीराम के साथ भी मैत्री करो ।

मेल कर लो सुग्रीव के साथ,
उस जैसा भाई नहीं संसार में,
यदि मानते मुझे अपना हितैषी,
तो आप मेरी ये बात मान लें ।

पर बाली ने भर्त्सना की तारा की,
बोला, कैसे मैं उसे सहन कर सकता,
जिसने रण में कभी पीठ न दिखाई,
कैसे वो ऐसा तिरस्कार सह सकता ?

श्रीराम मेरी कोई हानि करेंगे,
तुम दुखी न हो ऐसा सोचकर,
क्योंकि राम धर्मज्ञ और कृतज्ञ हैं,
वे ऐसा पापकर्म करेंगे क्योकर ?

फिर बोला, विकल मत होओ,
प्राण न लूँगा मैं सुग्रीव के,
यह सुन विजय कामना कर तारा,
चली गई अन्त:पुर को लौट के ।

कमर कस और घूँसा तानकर,
चल पड़ा बाली भाई को मारने,
सुग्रीव तो तैयार ही था लड़ने को,
दोनों गुत्थम-गुत्था हो लगे लड़ने ।

सुग्रीव का पराक्रम घटता देख,
चला दिया बाली पर बाण राम ने,
आहत हो गिरा भूमि पर बाली,
और राम की ओर लगा देखने ।

समीप आए हुए राम-लक्ष्मण से,
ये धर्मयुक्त कटु वचन कहे बाली ने,
दूसरे के साथ युद्ध करते हुए मेरा,
वध कर क्या ख्याति पा ली तुमने ?

हे राम ! तुम राजकुल में जन्में,
तेजस्वी और व्रतधारी कहलाते,
मनोनिग्रह, क्षमा, धर्म, धैर्य आदि,
राजाओं के गुण ये कहे जाते ।

तारा के मना करने पर भी,
यही सोच मैं लड़ने चला आया,
नहीं जानता था तुम पापाचारी हो,
मुझ निरपराध को तुमने मार गिराया ।

क्या कहोगे तुम सज्जनों के बीच,
ऐसा घृणित काम किया है तुमने,
राजा, ब्राह्मण और गौ का हत्यारा,
ये सब के सब जाते नरक में ।

चोर, जीवहन्ता, निंदक, नास्तिक,
बड़े भाई से पहले विवाह करने वाला,
कृपण, मित्रघाती और गुरु-स्त्री-गामी,
पापमय लोक ही इन्हें मिलने वाला ।

जैसे धूर्त पति को प्राप्त करके,
शीलवती स्त्री होती न सनाथ,
वैसे ही तुम जैसे शासक को पा,
वसुन्धरा कैसे हो सकती सनाथ ?

धूर्त, पर-अपकारी, नीच, अजितेन्द्रिय,
कैसे दशरथ के यहाँ जन्म हो गया,
निरपराध, उदासीन पर जैसे दिखलाया,
दुष्टों पर भी क्या वैसे बल दिखलाया ?

मेरे सम्मुख आ जो मुझसे लड़ते,
आज ही यम के दर्शन कर लेते,
पर तुमने तो वार किया छिपकर,
सोये व्यक्ति को जैसे सर्प डस लेते ।

सुग्रीव की प्रसन्नता के लिए भी,
अनुचित है तुम्हारा मुझे मारना,
मुझे दुःख नहीं अपनी मृत्यु का,
एक दिन तो सभी को है मरना ।

दुःख मुझे है इस बात का,
तुमने यह अनुचित काम किया,
क्या उत्तर दोगे लोगों को,
क्या इसका कोई विचार किया ?

कड़ा आक्षेप करने वाले बाली को,
उत्तर देते हुए कहने लगे राम,
उचित-अनुचित को जाने बिना ही,
तुम मेरी निंदा का कर रहे काम ।

क्या नहीं जानते सारे भूमण्डल पर,
इक्ष्वाकु-वंशियों का है अधिकार,
सब पशु-पक्षी और लोगों पर,
दण्ड और अनुग्रह उन्हीं का अधिकार ।

धर्म-अर्थ-काम के तत्त्वज्ञ भरत,
कर रहे अभी पृथ्वी पर शासन,
हम दोनों बन्धु और अन्य भी,
उनकी आज्ञा से कर रहे भ्रमण ।

महाराज भरत के शासन में,
कैसे कोई अधर्म कर सकता,
उनके आदेश का पालन करते,
काम कर रहे हम दण्ड देने का ।

तुम धर्म का कर रहे हो हनन,
काम के दास बन कुकर्म कर रहे,
समझते अपने को बड़ा नीतिज्ञ,
पर राजधर्म की उपेक्षा कर रहे ।

ज्येष्ठ भ्राता, पिता और शिक्षक,
माने जाते ये तीनों पिता-तुल्य,
छोटा भाई, पुत्र और गुणी शिष्य,
ये तीनों माने जाते पुत्र-तुल्य ।

सूक्ष्म होता है सज्जनों का धर्म,
आता नहीं सहज ही समझ में,
बिना धर्म का तत्त्व समझे तुम,
लग गए मुझे ही दोषी ठहराने ।

मानवीय परम्परागत धर्म छोड़,
उपभोग छोटे भाई की पत्नी का,
यह तुम्हारा घोर निंदनीय कर्म,
पात्र बनाता तुम्हें प्राण-दण्ड का ।

इस महात्मा सुग्रीव के जीते-जी,
इसकी भार्या रुमा के साथ,
जो तुम्हारी पुत्रवधू सी है,
कामासक्त हो तुमने किया पाप ।

अपनी सहोदरा भगिनी अथवा,
छोटे भाई की पत्नी के साथ,
करता व्यवहार जो कामुकता का,
प्राणदण्ड ही उचित उसके साथ ।

लक्ष्मण सा मित्रभाव सुग्रीव से भी,
प्रतिज्ञाबद्ध वो भी मेरे कल्याण को,
मित्र का उपकार करना ही चाहिए,
ऐसा सोच मैंने दण्ड दिया है तुमको ।

धर्म की ओर दृष्टि रखते हुए,
चाहिए था तुम इसे सहर्ष स्वीकारते,
इस विषय में महर्षि मनु ने कहा,
दण्ड से पापी पापमुक्त हो जाते ।

जो अपराधी राजा के पास जा,
अपना अपराध स्वीकार कर लेता,
राजा उसे दण्ड दे या क्षमा करे,
वह तो पाप से मुक्त हो जाता ।

परन्तु अपने कर्त्तव्य को भूल,
दण्ड न देता जो पापी को,
पाप को बढ़ावा देता वह राजा,
बनता पाप का भागी खुद वो ।

तुम्हें छिपकर मारने के लिए भी,
सन्ताप या दुःख नहीं है मेरे मन में,
अनेक शिकारी फंदा लगा या छल से,
करते ही रहते मृगों को वश में ।

इस प्रकार समझाने पर बाली को,
पश्चाताप हुआ बड़ा अपने पर,
निर्दोष मान श्रीराम को बाली,
क्षमा माँगने लगा हाथ जोडकर ।

कहने लगा कोई चिन्ता नहीं मुझे,
चिन्ता है केवल गुणी पुत्र अंगद की,
महाबलशाली, पर अभी अपरिपक्व है,
शरण मिले उसे हे श्रीराम ! आपकी ।

सुग्रीव और अंगद दोनों के प्रति,
स्नेहमयी सम बुद्धि रखें आप,
भरत और लक्ष्मण के जैसे ही,
उन पर दया बनाए रखें आप ।

मेरे अपराधों को लेकर सुग्रीव,
तपस्विनी तारा को कष्ट न दें,
मुझे और कुछ नहीं चाहिए,
बस आप इसकी व्यवस्था कर दें ।

आशवस्त किया बाली को राम ने,
कहा, ऐसा ही निश्चय किया हमने,
शोक और मोह त्यागकर तुम,
निश्चिन्त हो जाओ अपने मन में ।

चतुर्दश: सर्ग: से एकोनविंश: सर्ग:

बाली वध का जानकर तारा,
अंगद के साथ आ पहुँची वहाँ,
दुखी हो विलाप कर कहने लगी,
अंगद और मुझे अनाथ कर दिया ।

कोसने लगीं सुग्रीव को भी,
रुमा अब मिल जाएगी तुम्हें,
तुम्हारा शत्रुभूत भाई मारा गया,
निर्द्वन्द राज्य मिल गया तुम्हे ।

भूमि पर पड़े बाली को देख ,
बहुत विलाप कर रही थी तारा,
अत्यधिक शोक के कारण उसने,
अन्न-जल त्याग करने का विचारा ।

तब हनुमानजी उन्हें लगे समझाने,
बोले, किसके लिए शोक कर रहीं आप,
प्राणी सब अपने कर्मों को भोगते,
अब अंगद के लिए सोचिए आप ।

जीवन-मरण की अनिश्चितता विचार,
बुद्धिमान करें उत्तम कर्मों को,
बाली न्यायपूर्वक शासन करते थे,
उत्तम लोक प्रस्थान कर रहे वो ।

अंत्येष्टि संस्कार आदि कराकर,
राज्याभिषेक कीजिए अंगद का,
अपने पुत्र को सिंहासनारूढ़ देख,
उद्वेग दूर हो जाएगा आपका ।

तारा बोली, सुग्रीव ही करेंगे अब,
जो भी करना है, करना सुग्रीव को,
तभी सुग्रीव से मृतप्राय बाली बोला,
तुम आज ही सिंहासन ग्रहण कर लो ।

संस्कारवश और बुद्धि विपरीत होने से,
मेरे किए का मुझे दोषी न समझना,
भ्रातृप्रेम न होकर वैर हुआ आपस में,
भाग्य में नहीं था एक साथ हो रहना ।

फिर कहा मेरे पुत्र अंगद को,
तुम अपने पुत्र सा ही समझना,
मेरी मृत्यु से ये अनाथ हो गया,
अब तुम ही इसका पालन करना ।

तुमसा ही शोभावान और पराक्रमी,
अंगद राक्षसों से आगे बढ़ लड़ेगा,
संग्राम में मेरे समान ही अंगद,
शौर्य और कौशल का परिचय देगा ।

सूक्ष्म विषयों के निश्चय करने में,
निपुण है यह सुषण की पुत्री तारा,
होने वाले उत्पात आदि को जान लेती,
बड़ी अच्छी परामर्श-दात्री है तारा ।

प्रतिज्ञा की जो राम-काज करने की,
उसे भी तुम नि:शंक हो करना,
अधर्म होगा उसको नहीं करने से,
उनके कोप का भाजन पड़ेगा बनना ।

फिर कहा, उतार लो मेरे गले की माला,
सुखसमृद्धि, विजयश्री का वास इसमें,
मरने पर शक्ति घट जाएगी इसकी,
मेरे जीवित रहते पहन लो गले में ।

अंगद को भी सीख दी बाली ने,
कहा, सदा अधीन रहना सुग्रीव के,
जिस कार्य में भलाई हो सुग्रीव की,
तुम दृढ़-प्रतिज्ञ हो करना उसे ।

त्याग दिए तब प्राण बाली ने,
तारा उसे सम्बोधित कर बोली,
प्रार्थना स्वीकार करी न आपने,
स्वीकार करी यह भूमि पथरीली ।

बुद्धिमान लोगों को चाहिए,
शूरवीरों से विवाह न करें पुत्री का,
वीर की पत्नी बन विधवा हो गयी,
मान सम्मान भी मेरा जाता रहा ।

वज्र सा कठोर है मेरा हृदय,
क्यों नहीं शोक से फट जाता,
पुत्रवती हो या हो वो समृद्ध,
पतिहीन तो कहाएगी विधवा ।

यह सब देख विचलित हो सुग्रीव,
श्रीराम के पास जा लगे कहने,
करना नहीं चाहता मैं अब राज्य,
यह सब ऐसे होगा सोचा न मैंने ।

अपने गौरव और यश की सोच,
बाली ने न चाहा मेरा वध करना,
पर मैंने नीच बुद्धि के कारण,
चाहा सदा भाई का वध करना ।

छोड़ दिया बारम्बार मुझे उसने,
परिचय दिया अपने बडप्पन का,
पर क्रोध और स्वार्थ के वश हो,
मैंने दिखलाई बस चञ्चलता ।

हे राम ! सहज है मिलना सुपुत्र,
पर कठिन पुत्र अंगद सा मिलना,
जग में ऐसी कोई जगह नहीं,
सम्भव जहाँ सहोदर बन्धु मिलना ।

सजल हो आए नेत्र राम के भी,
एक मुहूर्त तक वे रहे उदास,
तदन्तर छटपटाती हुई तारा को,
मन्त्री ले आए श्रीराम के पास ।

तारा ने कहा, जिससे बाली मारा,
मुझे भी मार दीजिए वही बाण,
स्त्रीवध का यदि इसमें दोष मानते,
मार दीजिए बाली की आत्मा मान ।

प्राणीमात्र के हितैषी राम ने कहा,
मत करो तुम मृत्यु की कामना,
कर्मानुकुल सुख-दुःख का योग तो,
विधि के विधान की ही गणना ।

निर्माण और संचालन जगत का,
परमात्मा ने बनाया विधान इसका,
अतिक्रमण कर सकता न कोई,
अपना किया सबको भुगतना पड़ता ।

पद का अधिकारी होने के नाते,
तुम्हारा पुत्र ही युवराज बनेगा,
पहले की ही भाँति, हे तारा ! तुम्हें,
वैसा ही सुख-सम्मान मिलेगा ।

शत्रुतापी महात्मा राम के मुख से,
प्रसन्न हो गयी तारा यह सुनकर,
औरों को भी सान्त्वना दी राम ने,
कहा, निवृत हों सब संस्कारादि कर ।

लायी गयी एक अद्भुत शिबिका,
आभूषणों और हारों से सुभूषित,
बाली को उसमें ले जाकर किया,
अन्त्येष्टि संस्कार सम्मान सहित ।

विंश: सर्ग: से द्वाविंश: सर्ग:

तदन्तर हाथ जोड़ बोले हनुमान,
कृपा आपने की सुग्रीव पर,
राजा बनाइये उन्हें यहाँ का आप,
अभिषेक कीजिए नगर में आकर ।

श्रीराम ने कहा मैं वचनबद्ध हूँ,
चौदह वर्ष न जाऊँगा नगर में,
सुग्रीव के साथ आप सब जाएँ,
अभिषेक कर राजा बनाएँ इन्हें ।

फिर सुग्रीव से कहा, नीतिज्ञ हैं आप,
अंगद को दीजिए पद युवराज का,
सदाचारी, उदार, बली और पराक्रमी है,
अधिकार दीजिए आप उसे उसका ।

वर्षाकाल का यह चौमासा आ गया,
समय नहीं यह उद्योग करने का,
रहें आप किष्किन्धा नगरी में जाकर,
मैं यहीं इस पर्वत पर वास करूँगा ।

कार्तिक मास के आरम्भ होने पर,
करना प्रयास रावण के वध का,
अब आप जाएँ अपने निवास पर,
मैं यहीं आपकी प्रतीक्षा करूँगा।

किष्किन्धा नगरी चले गए सुग्रीव,
लोगों ने स्वागत कर अभिषेक किया,
श्रीराम के कहे अनुसार सुग्रीव ने,
अंगद को युवराज पद दे दिया ।

चले गए प्रस्रवण पर्वत पर राम,
पर शांति नहीं मिलती थी उन्हें,
रह-रह सीता का स्मरण हो आता,
लक्ष्मण सान्त्वना देते रहते उन्हें ।

जब वे रह रहे माल्यवान पर्वत पर,
वर्षाकाल आ गया, कहा राम ने,
सूर्यकिरणों से जल सोख, आकाश,
नौ महीने रखता पेट में अपने।

तत्पश्चात वर्षाकाल में पृथ्वी पर,
रसायन रूपी यह जल बरसाता,
तपकर वर्षा से सिंचित हो पृथ्वी,
सीता सी त्याग कर रही वाष्प का ।

काले-काले बादल जिनके मृगचर्म,
बहती जलधारा यज्ञोपवीत जिनका,
वायु पूरित कन्दराओं वाले ये पर्वत,
रूप लिए अध्ययन-रत ब्रह्मचारी का ।

नील मेघमाला में चमक रही बिजली,
जैसे रावण की गोद में छटपटाती सीता,
उष्णता मिट गयी, शीतल वायु बह रही,
जल से भर गए सब नाले और सरिता ।

मयूर नृत्य कर रहे हैं वन में,
वृक्ष लद रहे रंग-बिरंगे फूलों से,
भ्रमर-पंक्तियाँ गुन्जार कर रहीं,
पृथ्वी आच्छादित हरी घास से ।

भौरों की गुन्जार, झन्कार वीणा की,
मेंढकों की टर्र-टर्र, ताल गले से,
मेघों की गड़-गड़ाहट, मृदंग की गमक,
वन में संगीत हो रहा है ऐसे ।

गजेन्द्र मदमत्त, वृषभ प्रसन्न हैं,
पराक्रम-युक्त हैं सिंह वनों में,
राजा निवृत्त विजय-यात्राओं से,
सब आनन्द-मग्न अपने घरों में ।

कोई अनुष्ठान किया होगा भरत ने भी,
सुग्रीव भी सब तरह सुखी हो गया,
पर मेरी भार्या हर ली गई, हे लक्ष्मण !
महान शत्रु रावण से पाला पड़ गया ।

वर्षा में मार्ग की दुर्गमता देख,
तब सुग्रीव को कुछ कहा न मैंने,
समय पर सुग्रीव स्वयं आ जाएँगे,
कोई आशंका नहीं है मेरे मन में ।

त्रयोविंश: सर्ग: से सप्तविंश: सर्ग:

वर्ष ऋतु गयी, कार्तिक आ गया,
तब सुग्रीव से जाकर बोले हनुमान,
हे कपिराज ! आप सुखी समृद्ध हुए,
अब पूर्ण करें अपने मित्र का काम ।

मित्रों के साथ उत्तम व्यवहार,
राज्य और यश दोनों को बढ़ाता,
कोष, सेना और मित्र से प्यार,
राज्य का निर्द्वन्द उपभोग कराता ।

सदाचार सम्पन्न, सन्मार्ग मार्गी,
काम करें अब आप मित्र का,
सब छोड़ मित्र का हित साधना,
अनर्थ में फँसने से बचाता ।

समय बीत जाने पर करने से,
आसानी से मिलती न सफलता,
सीता को खोजने का समय भी,
हे नाथ ! अब बीता ही चाहता ।

समयोचित और उत्तम वचन सुन,
सुग्रीव ने तुरन्त निश्चय कर डाला,
सेनापति नील से कहा अंगद के साथ,
संग्रह कर लें वे सारी सेना का ।

उधर राम कहने लगे लक्ष्मण से,
वर्षा ऋतु गयी, शरदकाल आ गया,
बादलों की गरज, झरनों को शोर,
शान्त हो गया, पथ सुगम हो गया ।

विजय अभिलाषी राजाओं के लिए,
उद्योग करने का समय आ गया,
पर न तो अभी सुग्रीव दिखता है,
न खबर कि क्या उद्योग किया ?

सीता को खोजने के लिए उसने,
निश्चित की थी समय की अवधि,
पर अपना मनोरथ सिद्ध होने पर,
चेतता नहीं वह सुग्रीव दुर्मति ।

हे लक्ष्मण ! तुम जाओ किष्किन्धा,
कहो सुग्रीव को यह मेरी ओर से,
जग में अधम पुरुष वह माना जाता,
जो फिर जाता अपनी ही बात से ।

पर भली-बुरी जो भी कर ली,
उत्तम पुरुष अपनी प्रतिज्ञा निभाता,
मनोरथ सिद्धि के बाद कृतघ्न,
मित्र से की प्रतिज्ञा भूल जाता ।

कहना, देखना चाहता क्या मेरा धनुष,
बाली सिधारा वो मार्ग बन्द न हुआ,
अपनी प्रतिज्ञा का पालन करे दृढ़ता से,
वरना बन्धुओं सहित समझे मरा हुआ ।

क्रोधित लक्ष्मण चले किष्किन्धा,
विशाल, मनोहरी, सुशोभित वृक्षों से,
सुन्दर और दृढ़ भवन राजमार्ग पर,
नगरी परिपूर्ण सभी धन-धान्य से ।

देखा सुग्रीव का भव्य भवन,
इन्द्र के महल सा जो लग रहा,
सात ड्योंढियों को पार कर,
सुग्रीव का अन्त:पुर स्थित था ।

सभी सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण,
सोने-चाँदी के पलंग और आसन,
मधुर स्वर ताल और लय में,
हो रहा था वहाँ पर वीणावादन ।

राग-रंग में डूबे अन्त:पुर को देख,
लक्ष्मण हो गए कुछ लज्जित से,
फिर आभूषणों की झंकार सुन,
भर गए वो अत्यन्त क्रोध से ।

धनुष की प्रत्यंचा को टंकारा ऐसे,
कि दिशाएँ गुंजायमान हो उठीं उससे,
चरित्ररूपी आभूषण से समलंकृत लक्ष्मण,
राम के दुःख से दुखी, आगे न बढ़े ।

जान गए टंकार को सुन सुग्रीव,
कि आ पहुँचे हैं वहाँ लक्ष्मण,
अत्यन्त भयभीत होकर सुग्रीव,
खड़े हो गए छोड़कर आसन ।

असहय जान लक्ष्मणजी का क्रोध,
कहने लगे सुग्रीव बुद्धिमती तारा से,
लक्ष्मणजी तो स्वभाव से कोमल हैं,
फिर क्यों आए हैं इतने क्रोध से ?

यदि हमसे कोई अपराध हो गया हो,
विचार कर कोई उपाय बतलाओ,
या जाकर तुम स्वयं मिलो उनसे,
जैसे भी हो उनको शान्त कराओ ।

शुद्धान्त:करण वाले हैं लक्ष्मणजी,
तुम्हें देखकर वे कुपित नहीं होंगे,
तुम्हारे पीछे-पीछे मैं आता हूँ,
जब वे कुछ शान्त हो गए होंगे ।

सुग्रीव की धर्मपत्नी तारा को देख,
धैर्य धारण कर लिया लक्ष्मणजी ने,
तारा ने पूछा क्यों क्रोधित हैं आप,
आप की अवज्ञा का साहस है किसमें ?

गर्वमिश्रित सान्त्वनापूर्ण बात सुन,
लक्ष्मणजी बोले, क्यों भूल गया सुग्रीव,
अवधि समाप्त हुई सीता की खोज की,
पर भोग में ही डूबा हुआ है सुग्रीव ।

उपकारी का उपकार न करता,
होता वो अधर्म का भागी,
मित्र से विरोध या मैत्री भंग,
इससे बड़ी न कोई हानि ।

मित्र का पूरा सहयोग करना,
और सद्मार्ग पर चलाना उसको,
मित्रता के ये प्रशंसित आयाम,
सुग्रीव भूल गया दोनों को ।

विश्वास दिलाते तब बोली तारा,
समय नहीं यह क्रोध करने का,
अपराध हो भी जाए सहायक से,
तो कर देना चाहिए उसे क्षमा ।

इस समय अपने भाई सुग्रीव को,
जो कामासक्त हो निर्लज्ज हो गया,
छिपा आपके भय से मेरे पीछे,
कृपा कर उसे कर दीजिए क्षमा ।

सुग्रीव ने आपके कार्य के लिए,
पहले ही मन्त्रियों को आज्ञा दे दी,
नील और अंगद दोनों मिलकर,
कर रहे हैं सारी सेना इकठ्ठी ।

तब देवी तारा के कहने पर,
अन्त:पुर में प्रवेश किया लक्ष्मण ने,
अपने सिंहासन से उठ पड़े सुग्रीव,
अन्त:पुर में आते देख उन्हें ।

क्रोधित हो लक्ष्मणजी कहने लगे,
अपनी प्रतिज्ञा जो पूरी नहीं करता,
कौन होगा उससे अधिक क्रूर, निर्दयी,
जो मित्र के साथ कृतघ्नता करता ?

हे वानर ! अनार्य, नीच और कृतघ्न,
श्रीराम की तुम अनदेखी कर रहे,
यदि तुम करते नहीं काम राम का,
उनके बाण तुम्हारी बाट जोह रहे ।

कहने लगीं तारा तब उनसे,
उचित नहीं इतने कठोर वचन,
ये सुग्रीव वानरों के राजा हैं,
क्रूर, कुटिल न ये कृतघ्न ।

भूले नहीं हैं ये उपकार राम का,
उन्हीं की कृपा से मिला सब इन्हें,
यश, वानरराज्य, रुमा और मैं,
बहुत समय बाद ये मिला इन्हें ।

उत्तम सुख को प्राप्त कर इन्हें,
दिखाई न दिया समय जाता,
जैसे विश्वामित्र ने अप्सरा संग,
दस वर्षों को एक दिन समझा ।

जब हो सकता ऐसा उनके साथ,
तो साधारण लोगों की बात ही क्या,
स्वभाववश हुए इस अपराध को,
आप श्रीराम से करवा दें क्षमा ।

आवश्यकता पड़ने पर सुग्रीव,
त्याग देंगे रुमा आदि हम सबको,
राक्षसाधम उस रावण को मार,
लौटा ले आएँगे सुग्रीव सीता को ।

वानर युथप जो बुलवा भेजे हैं,
पहुँच जाएँगे वे सब यहाँ आज,
अब आप अपना क्रोध त्याग दें,
शीघ्र ही बन जाएगा सब काज ।

अष्टाविंश: सर्ग: से द्वात्रिंश: सर्ग:

तारा के इन विनीत शब्दों को सुन,
लक्ष्मणजी ने स्वयं को शान्त कर लिया,
तब सुग्रीव नम्रतापूर्वक बोले मैंने,
श्रीराम की कृपा से ही सब प्राप्त किया ।

कौन चुका सकता ऋण उनका,
वे स्वयं समर्थ रावण को मारने में,
मैं तो रहूँगा नाममात्र का सहायक,
वे तो बस श्रेय दे रहे हैं हमें ।

विश्वास या स्नेह के वशवर्ती,
कोई अपराध हो भी गया सेवक से,
तो क्षमा कर दें वे मेरा अपराध,
कौन ऐसा अपराध हुआ न जिससे ?

लक्ष्मणजी तब प्रसन्न हो बोले उनसे,
आपसा विनम्र और स्नेही मित्र पाकर,
मेरे ज्येष्ठ भाई श्रीराम कृतार्थ हैं,
आपका आश्रय और सहायता पाकर ।

शुद्ध व्यवहार और सरलता आपमें,
सर्वथा योग्य इस राज्य के राजा के,
कोई संदेह नहीं रावण शीघ्र मरेगा,
आप मेरे साथ चलें मिलने राम से ।

तब हनुमान से कहा सुग्रीव ने,
शीघ्र सब वानरों को बुलवा लें,
जो दस दिन में आएँ न यहाँ,
आपने प्राणों का मोह त्याग दें ।

दूत भेज दिए गए सभी ओर,
वानर आज्ञापालन करने में लगे
गिरि-गुहाओं और नदी-तटों से,
वानर किष्किन्धा में आने लगे।

फिर आदेश दे पालकी मँगवा,
लक्ष्मण और सुग्रीव बैठे उसमें,
हाथ जोड़ सुग्रीव मिले राम से,
राम ने गले लगा लिया उन्हें ।

फिर सुग्रीव से कहने लगे राम,
राजा ठीक से करे समय का विभाग,
कटु परिणाम भोगना पड़ता उसे,
धर्म और अर्थ जो कर देता त्याग ।

शत्रु का वध करने में तत्पर,
कटिबद्ध मित्रों का संग्रह करने में,
धर्म, अर्थ और काम रूपी त्रिवर्ग,
समर्थ होता वो उसे भोगने में ।

सुग्रीव बोले, ये मुख्य वानरवीर,
लेकर आए हैं असंख्य सैनिकों को,
जाएँगे सब ये सीता को खोजने,
रण में ये मार देंगे रावण को ।

राम ने कहा, पहले जानना है,
सीता जीवित भी है या नहीं,
फिर इसका पता लगाना है,
रावण की कौन सी है नगरी ?

सीता को खोजने में सक्षम,
न मैं हूँ, न ही है लक्ष्मण,
यह कार्य तुम्हीं को करना है,
इसे करने में तुम ही सक्षम ।

विनत नाम के वानर को बुला,
सुग्रीव ने कहा पूर्व दिशा में जाओ,
सौम्य और प्रतापी वानर साथ ले,
सब जगह सीता का पता लगाओ ।

जाओ उदयाचल तक पता लगाने,
सीता और रावण का पता लगाओ,
शीघ्रता करो तुम इस काम में,
एक माह के भीतर ही लौट आओ ।

इस आज्ञा का उल्लंघन जो करेगा,
पायेगा प्राणदण्ड वो मुझसे,
सावधान ! सफल मनोरथ हो लौटना,
यही आशा करता हूँ तुमसे ।

फिर दक्षिण दिशा में सुग्रीव ने भेजे,
कार्यसाधन में परीक्षित वानर महान,
अग्निपुत्र नील, गज, गवाक्ष, गवय,
ब्रह्मापुत्र जाम्बवान और हनुमान ।

इनके साथ ही सुषेण, वृषभ, द्विविद,
मैंन्द, विजय, गन्धमादन और अंगद,
गति, वेग और पराक्रम सम्पन्न सब,
उत्साह से भरपूर और बड़े गदगद ।

सुग्रीव ने सन्देश दिया उनको,
'सीता को देखा' जो कहेगा आकर,
मेरे ही समान वैभव पाएगा वो,
सुख से रहेगा सब कुछ पाकर ।

फिर महर्षि मरीचि के पुत्रों को,
श्वसुर सुषेण सहित पश्चिम में भेजा,
दो सहस्त्र सैनिकों को साथ कर,
अस्ताचल तक जाकर खोजो, कहा ।

उत्तर दिशा में भेजा शतबलि को,
कहा जाकर सीता का पता लगाएँ,
श्रीराम का यह प्रिय कार्य कर,
अपने जीवन को सफल बनाएँ ।

वानरों की नियुक्ति करने के बाद,
विशेष बातें कुछ कही हनुमान से,
कार्यसिद्धि का पूरा विश्वास था,
उन्हें पवनपुत्र महाबली हनुमान से ।

बोले, गति, वेग, तेज और फुर्ती में,
तुम अपने पिता पवन समान हो,
बल, बुद्धि, पराक्रम, क्षमता और नीति,
इन सबसे तुम पूर्णतया भूषित हो ।

कोई नहीं है इस भूमण्डल पर,
तुम्हारे समान तेजस्वी, हे हनुमान !
सीता का पता लगाने का उद्योग,
सफल कर लौटना, हे हनुमान !

इतना विश्वास हनुमान पर देख,
विश्वास हो गया राम के मन में,
सीता को भरोसा दिलाने के लिए,
अपनी मुद्रिका दी राम ने उन्हें ।

बोले, यह अँगूठी देखकर सीता,
जान जाएँगी तुम मेरे दूत हो,
तुम्हारा बल, बुद्धि बता रही,
आओगे तुम अवश्य सफल हो ।

त्रयन्सित्रश: सर्ग: से सप्तत्रिंश: सर्ग:

सब वानर चल दिए आदेशानुसार,
हर जगह खोजने लगे सीता को,
सरोवर, नदी, लताकुन्ज, आकाश,
नगर, पर्वत और सभी जगहों को ।

दिन भर खोजकर इधर-उधर,
एक जगह आ जाते रात में,
खोजते रहे वे महीने भर तक,
लगा नहीं कुछ उनके हाथ में ।

दक्षिण में गए थे हनुमान आदि,
पहुँच गए बहुर दूर विन्ध्याचल वो,
ढूँढा बहुत सीता को उन्होंने,
पर खोज न पाए सीता को वो ।

दुखी और उदास उन वानरों को,
करने लगे अंगद उत्साहित,
खिन्न न होना, मन न हारना,
कार्य-सिद्धि के साधन निश्चित ।

फिर से ढूँढने लग गए वानर,
घूम-घूमकर खोजने लगे सीता को,
एक जगह दिखाई दिया बड़ा बिल,
बड़ा ही दुर्गम लग रहा था जो ।

सम-विषम दुर्गम स्थानों के मर्मज्ञ,
हनुमान उस बिल को देखकर बोले,
पक्षी भीगे हुए निकल रहे यहाँ से,
अवश्य जल का स्रोत यहाँ नीचे ।

घुस गए तब वे वानर बिल में,
चारों ओर बड़े-बड़े भवन थे वहाँ,
सोने-चाँदी के बर्तनों के ढेर लगे,
बहुमूल्य सवारियाँ भी खड़ी थीं वहाँ ।

अगर, चन्दन, फल, भोजन आदि,
मूल्यवान वस्त्र भी रखे थे वहाँ,
एक तपस्विनी को देख पूछा हनुमान ने,
'तुम कौन हो' क्या कर रही हो यहाँ ?

उसने बताया, मय नामक दानव ने,
किया था निर्माण इस वन का यहाँ,
मैं मेरुसावर्णी की पुत्री स्वयंप्रभा हूँ,
तुम लोग बताओ क्यों आए हो यहाँ ?

हनुमानजी ने सब वृतांत कह सुनाया,
सीताजी के हरण का भी बतलाया,
बोले, हमारे राजा सुग्रीव, मित्र राम के,
उन्होंने ही हमें यहाँ पर भिजवाया ।

खोज के लिए निश्चित एक माह,
वो तो पूरा हो गया इसी बिल में,
हम लोग यहाँ आकर फँस गये हैं,
अब आप हमें बाहर निकाल दें ।

तापसी ने कहा, यहाँ आने के बाद,
कठिन है यहाँ से जीवित निकलना,
फिर भी आप सब आँखें बन्द कर लें,
खुली आँखें सम्भव नहीं निकलना ।

ढक ली हाथों से उन्होंने आँखें,
तापसी ने बाहर निकाल दिया उन्हें,
एक तरफ विन्ध्याचल पर्वत दिखा,
दूसरी ओर दिखा विशाल समुद्र उन्हें ।

निश्चित अवधि तो बीत चुकी थी,
वानर चिन्ता करते वहीं बैठ गए,
अंगद बोले मृत्यु तो निश्चित है,
क्यों न अन्न-जल छोड़, यहीं रहें ?

महाराज सुग्रीव का स्वभाव उग्र है,
कार्य पूरा न हुआ, हमें मृत्यु मिलेगी,
इष्ट-मित्रों के सामने निन्द्य मृत्यु से,
अच्छा है यहीं दे दें बलि प्राणों की ।

विचलित हो कहने लगे सब वानर,
सुग्रीव मरवा देंगे निश्चित ही हमको,
सीता में अनुरक्त श्रीराम प्रसन्न हों,
सो छोड़ेंगे नहीं कदापि वो हमको ।

स्वामी के काम में फिर जुटें अंगद,
हनुमान करने लगे प्रयास इसका,
'भेद' उत्पन्न कर दिया वानरों में,
फिर सहारा लिया उन्होंने 'भय' का ।

अंगद से बोले, मानेंगे बस कुछ दिन,
सदा तुम्हारी बात ये नहीं मानेंगे,
यहाँ रह स्त्री-पुत्रों से बिछुड़कर,
तुमसे भी विद्रोह ये करने लगेंगे ।

नील आदि, मेरा और इन सबका,
सुग्रीव से मन तुम फिरा न सकोगे,
मित्र, हितैषी, बन्धुओं से अलग हो,
तिनके से भी गए-बीते हो रहोगे ।

यदि आप साथ चलें विनीत भाव से,
तो सुग्रीव आपको स्वीकार कर लेंगे,
वे धर्मात्मा, दृढ़व्रत और स्त्यप्रतिज्ञ हैं,
तुम्हारा वध वे कदापि न करेंगे ।

कृपालु हैं तुम्हारी माता पर भी,
और सुग्रीव को कोई पुत्र भी नहीं,
हे अंगद ! लौट चलो किष्किन्धा,
हम सबके लिए यही है सही ।

अंगद बोला कोई गुण न उनमें,
बहुत से निन्दनीय काम किए उन्होंने,
माता के समान बड़े भाई की पत्नी,
उनके जीते-जी ग्रहण कर ली उन्होंने ।

रक्षा के लिए नियुक्त किया उन्हें,
संग्राम में जाते हुए भाई ने,
पर भाई की रक्षा तो करी नहीं,
गुफा ही बन्द कर दी उन्होंने ।

सत्य को साक्षी कर मैत्री करी,
फिर भूल गए वो मित्र को,
हमें भेजा सीताजी को खोजने,
क्योंकि लक्ष्मण से डर लगा उनको ।

अब जब मैंने सब कह ही दिया,
सुग्रीव का भी अपराधी बन गया मैं,
हीनबल मैं, कैसे जी सकूँगा,
दुर्बल, अनाथ सा किष्किन्धा में ?

धूर्त, निर्दयी और क्रूर सुग्रीव,
चुपके से प्राणदण्ड दे देगा मुझे,
या बन्दी बना भेज देगा कारागार,
बेहतर अनशन कर मरना मुझे ।

हे वानरों ! अनुमति दो मुझे आप,
और लौट जाओ सब अपने घरों को,
मैं प्रतिज्ञा करता हूँ आपके समक्ष,
कभी लौटूँगा न मैं किष्किन्धा को ।

फिर कुश बिछा बैठ गए भूमि पर,
सब वानर निराश हो रोने लगे,
वे स्वयं भी मरने को तैयार हो,
वहीं अंगद को घेरकर बैठ गए ।

करने लगे वे चर्चा आपस में,
श्रीराम का भी जीवन वृतान्त,
कैसे सीता का अपहरण हुआ,
जटायु का भी किया बखान ।

अष्टात्रिंश: सर्ग:

बैठे थे पर्वत के जिस भूभाग पर,
वहीं सम्पाति आ उपस्थित हो गया,
जटायु का बड़ा भाई था सम्पाति,
उसका नाम सुन वो वहाँ आ गया ।

गृध्रकूट का भूतपूर्व राजा सम्पाति,
एक गुफा से आया था निकलकर,
बोला, कौन जटायु का नाम ले रहा,
मेरा हृदय रह गया है दहलकर ।

नीचे उतार लें मुझे गुफा से,
अर्से बाद नाम सुना भाई का,
गुण और पराक्रम में सराहनीय,
जटायु मेरा छोटा भाई था ।

कह सुनाओ मुझे सब बात,
बहुत उत्सुक हूँ मैं जानने को,
तब अंगद उन्हें नीचे उतार लाए,
और सारा वृतान्त बताया उनको ।

कैसे हुआ वध जटायु का,
कैसे सीता की करी सहायता,
फिर पूछा यदि आप जानते,
तो बताएँ पता उस राक्षस का ।

सम्पाति बोले, वृद्ध हो गया मैं,
पर वाणी से कर सकता सहायता,
एक तरुणी स्त्री को देखा था मैंने,
जिसे दुष्ट रावण हर ले जा रहा था ।

राम ! राम ! तथा लक्ष्मण ! लक्ष्मण !
पुकार-पुकार वो चिल्ला रही थी,
छाती पीट रुदन कर रही थी,
आभूषण उतारकर फेंक रही थी ।

बार-बार नाम ले रही थी राम का,
मेरा अनुमान है वह सीता ही होगी,
वो राक्षस विश्रवा का पुत्र रावण है,
सौ योजन दूर लंकापुरी नगरी उसकी।

वहीं कैद कर रखा है सीता को,
राक्षसियाँ घेरे रहती हैं उसे,
दिव्य चक्षुबल[14] से देख सकता हूँ,
यहीं से मैं बैठे-बैठे ही उसे ।

सीता कहाँ है यह जानकर,
हर्षित हो वानर उछलने लगे,
लेकिन विशाल समुद्र को देख,
उसे दुर्गम जान घबराने लगे ।

अंगद ने ढाँढस बंधाया उनको,
कहा, हिम्मत न हारो, धीरज धरो,
विषाद से कुछ लाभ न होता,
कौन इसे कर सकता, विचार करो ।

सौ योजन विस्तृत समुद्र लाँघ,
कौन हमे भय-मुक्त कर सकता,
सन्नाटा छा गया वानरों में,
कौन असम्भव, सम्भव कर सकता ?

जाम्बवान बोले तब पवनपुत्र से,
हे कपिश्रेष्ठ ! तुम चुप क्यों हो,
बल, बुद्धि, तेज में सबसे आगे,
तुम अपनेआप को भूले क्यों हो ?

संकट में हैं हम सबके प्राण,
आप ही हमारी रक्षा कर सकते,
अन्य कोई कर सके, न कर सके,
आप यह समुद्र लाँघ सकते ।

जाम्बवान के उत्साह-वर्धन करने से,
हनुमान बड़े-बूढ़ों को प्रणाम कर बोले,
मेरी चेष्टा और उत्साह अनुकूल है,
मैं सीता को अवश्य देखूँगा, वे बोले ।

यह सुन जाम्बवान प्रसन्न हो बोले,
वानर यहाँ प्रार्थना करेंगे तुम्हारे लिए,
गुरुजनों का आशीर्वाद साथ है तुम्हारे,
हम प्रतीक्षा करेंगे, एक पैर पर खड़े ।

इति किष्किन्धाकाण्डम्

---

[14] महर्षि वाल्मीकि ने इसे 'सुपर्ण' (सूर्य) विद्या से सिद्ध चक्षुबल अर्थात एक तरह का ऐनक या दूरदर्शी यंत्र वर्णित किया है ।

अथ सुन्दरकाण्डम्

अथ सुन्दरकाण्डम्

प्रथम: सर्ग: से सप्तम: सर्ग:

सीता का पता लगाने के लिए,
उड़ चले आकाशमार्ग से हनुमान,
चीर चले मेघमण्डल को गरुड़ से,
छिपते, कभी प्रकट होते हनुमान ।

सिंहिका नाम की एक राक्षसी,
सोचने लगी खाना मिलेगा पेट भर,
पकड़ी परछाई हनुमान की उसने,
पर गिरा दिया उन्होंने, उसे मारकर ।

आकाशचारी प्राणी बोले यह देखकर,
मार दिया आपने इस बली राक्षसी को,
अद्‌भुत और बड़ा विस्मयकारी है यह,
कल्याण हो आपका, कार्य सिद्‌ध हो ।

धैर्य, सूक्ष्म दृष्टि, बुद्‌धि और चातुर्य,
ये चार गुण होते जिस प्राणी में,
तुम्हारी ही तरह ऐसा पुरुषार्थी,
असफल नहीं होता किसी काम में ।

उस अलंघ्य समुद्र को पार कर,
त्रिकुट पर्वत पर देखी लंका,
भलीभाँति रक्षित, कमलों से पूर्ण,
खाइयों से घिरी हुई थी लंका ।

राक्षस पहरा देते घूम-घूमकर,
सोने के परकोटे से घिरी लंका,
ऊँचे और विशाल भवन बने थे,
अमरावती सी लग रही थी लंका ।

क्या उपाय करूँ, सोचने लगे हनुमान,
कैसे अकेली जानकी के करूँ दर्शन,
कुछ छिप नहीं सकता राक्षसों से,
चाहे कोई रूप मैं कर लूँ धारण ।

फिर सोच-समझकर, बौना बनकर,
रात्रि में प्रवेश किया लंका में उन्होंने,
लेकिन देख लिया उन्हें प्रवेश करते,
लंका की अधिष्ठात्री रक्षिका 'लंका' ने ।

पूछने लगी तू कौन और क्यों आया,
प्राणदण्ड से पहले सब बता दे मुझे,
वे बोले, मैं सब बतला दूँगा, लेकिन,
क्यों मार्ग रोक रही, पहले बता तू मुझे ।

वो बोली लंका की रक्षिणी 'लंका' हूँ,
मेरी अवहेलना कर तुम जा नहीं सकते,
हनुमान बोले लंका देखना चाहता हूँ मैं,
इसे देखने का कुतुहल है मेरे मन में ।

बार-बार आग्रह करने पर भी,
उन्हें भीतर जाने दिया न उसने,
कसकर उन्हें एक थप्पड़ मारा,
तो एक घूँसा उसे मारा कपि ने ।

हल्के से उस घूंसे के प्रहार से,
गिर पड़ी वो भूमि पर लोट-पोट हो,
अभिमान रहित हो कहने लगी,
जा सकते हो तुम जहाँ जाना चाहो ।

मुख्य द्वार से प्रवेश न कर,
परकोटा फाँद[15] हनुमान घुसे लंका में,
भीतर भवनों में कहीं अट्टहास हो रहा,
कहीं वाद्य-यन्त्र बज रहे भवनों में ।

कहीं राक्षस वेद-मन्त्र पाठ कर रहे,
कहीं स्वाध्याय कर रहे कुछ राक्षस,
छावनी में रावण के गुप्तचर देखे,
भिन्न-भिन्न वेश रखे हुए वे राक्षस ।

पर्वत शिखर पर महल रावण का,
ऊँची चहारदीवारी, खाइयों से घिरा,
स्वर्ग सा सुन्दर और अलौकिक,
जिसके भीतर दिव्य संगीत बज रहा ।

आभूषणों से अलंकृत हिनहिनाते घोड़े,
रथादि यान, विमान, चतुर्दन्त श्वेत हाथी,
खड़े हुए थे उस भवन के द्वार पर,
जिसका पहरा दे रहे राक्षस महाबली ।

उस राजप्रासाद के मध्य में उन्होंने,
एक निर्मल विशाल भवन देखा,
सर्वत्र उस महल में घूमे हनुमान,
एक पलंग पर रावण को सोते देखा ।

फैली हुई थी दोनों भुजाएँ रावण की,
गंधित श्वास मुख से निकल रही थी,
अनेक स्त्रियाँ सोयी पड़ीं इधर-उधर,
एक पलंग पर मन्दोदरी सोयी थी ।

पहले तो वे समझ बैठे सीता है,
फिर बदल गयी उनकी मति,
अलंकृत, मद्यपान किये मन्दोदरी,
कदापि सीता नहीं हो सकती ।

अन्त:पुर में हुए न कहीं भी,
दर्शन उन्हें देवी सीता के,
चिन्ता हुई यूँ स्त्रियों को देखना,
विरुद्ध है उनके धर्माचरण के ।

फिर एकाग्रचित्त हो सोचते-सोचते,
एक और विचार उठा उनके मन में,
कर्त्तव्य-वश मैंने यह काम किया है,
कोई विकार उठा न मेरे मन में ।

शुभ और अशुभ कार्यों का प्रेरक,
मेरा मन तो है मेरे वश में,
पराई स्त्रियों को देखने का पाप,
किसी तरह नहीं किया है मैंने ।

सीताजी को वहाँ न पाकर हनुमान,
निकल पड़े उन्हें अन्यत्र खोजने,
तहखाने, निर्जन घर, ऊपर-नीचे,
सर्वत्र लगे वो सीता को खोजने ।

एक बार फिर से सब जगह देख लीं,
पर सीताजी उन्हें मिली न कहीं,
उठने लगीं तरह-तरह की कुशंकाएँ,
क्या आते हुए समुद्र में गिर गईं ?

---

[15] मित्र के घर में मुख्य द्वार से और शत्रु के घर तोड़-फोड़ कर घुसना शास्त्र-सम्मत है । दूसरे मुख्य द्वार से जाने पर हनुमानजी पहरेदारों की निगाह में आ सकते थे ।

सीताजी को बिना देखे जो लौटा,
क्या मुँह दिखाउँगा मैं जाकर,
श्रीराम तुरन्त प्राण तज देंगे,
सीताजी का कोई समाचार न पाकर ।

लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और माताएँ भी,
क्रमश: तज देंगे अपने-अपने प्राण,
सुग्रीव, तारा आदि भी जी न सकेंगे,
वानरों के भी निकल जाएँगे प्राण ।

यूँ सोच-विचार कर रहे थे हनुमान,
तभी कौंधा ये उनके मन में,
विशाल वृक्षों वाली अशोकवाटिका,
वहाँ तो उन्हें खोजा न मैंने ।

अष्टम: सर्ग: से एकादश: सर्ग:

अशोकवाटिका पहुँच देखा उन्होंने,
पक्षी वाटिका में कलरव कर रहे,
चहुँ ओर सोने-चाँदी से चमकते वृक्ष,
भौंरें उन पर गुन्जार कर रहे ।

जल से परिपूर्ण अनेक बावलियाँ,
सीढ़ियों में जिनकी मणियाँ जड़ी,
उच्च शिखर वाला कृत्रिम पर्वत,
जिससे बह रही थी एक नदी ।

फिर स्वर्ण से चमकने वाला,
एक अशोक वृक्ष देखा उन्होंने,
उस वृक्ष के पत्तों के पीछे छिप,
सीता को खोजने का सोचा उन्होंने ।

सीता वन भ्रमण में कुशल हैं,
और सन्धया भी करती होंगी,
या इस नदी में स्नान करने,
सुबह-शाम वे यहाँ आती होंगी ।

ऐसा सोच छिप गए हनुमान,
सघन पत्तो के बीच उस वृक्ष के,
प्रतीक्षा करने लगे छिपे-छिपे,
चारो ओर निगाहें जमाए हुए ।

समीप ही एक भवन से देखी,
एक निर्मल स्त्री निकलती हुई,
मैले वस्त्रों में, दुर्बल और दुखी,
अनेक राक्षसियों से घिरी हुई ।

तर्क-वितर्क कर हनुमानजी ने तब,
निर्णय किया कि यही हैं सीता,
सोचने लगे काल बड़ा प्रबल है,
किस दशा में यहाँ रह रही सीता ?

अपने पति के प्रेम के वशीभूत,
तिलान्जली देकर सभी सुखों को,
निर्जन वन में चली आईं सीता,
अपने पति का साथ निभाने को ।

राजकीय सुख-भोगों से वंचित,
और अपने प्रिय जनों से रहित,
श्रीराम से मिलने की आशा में ही,
अपने प्राणों को रख हैं जीवित ।

न देखती वे इन राक्षसियों को,
न ही इन फले-फूले वृक्षों को,
श्रीराम के प्रेम में होकर मग्न,
अपने हृदय में सदा देखतीं उनको ।

वृक्ष पर बैठे, सीता को खोजते,
थोड़ी ही रात्रि शेष रह गयी,
उषाकाल वेद-ध्वनी सुनी उन्होंने,
यज्ञ करने वाले कुछ राक्षसों की ।

उधर महाबली रावण आसक्ति वश,
सुबह-सुबह आ पहुँचा वाटिका में,
चँवर, छत्रादि लिए स्त्रियों के साथ,
समीप आ गया वो सीता को देखने ।

रावण को वहाँ आया हुआ देखकर,
सीता केले के पत्तों सी लगी कांपने,
हाथ, पैरों से ढक लिया अपना तन,
आँखों से अविरल आँसू लगे बहने ।

सभी अंगों पर मैल चढ़ा था उनके,
फिर भी सुन्दर प्रतीत हो रहीं थी,
कीचड़ से सनी कमलिनी सी सुशोभित,
पर मलिनता अशोभित कर रही थी ।

सीता उस समय लग रही थी,
नष्ट कीर्ति, तिरस्कृत श्रद्द्घा सी,
मन्द पड़ी हुई बुद्धि के समान,
और जो टूट गयी हो उस आशा सी ।

दीन, दुखी, तपस्विनी सीता से,
हाव-भाव दिखाता हुआ बोला रावण,
चाहता हूँ मैं तुझे पूरे हृदय से,
फेर मेरी ओर को तू भी अपना मन ।

न कोई मनुष्य, न कोई राक्षस है,
फिर तू डर रही है किस से,
मुझसे तुझे जो भय हो गया है,
उसे निकाल दे अपने हृदय से ।

बलपूर्वक स्त्रियों का हरण करना,
और बना लेना उन्हें अपना,
राक्षसों का यह स्वाभाविक धर्म है,
तुझे बना के रहूँगा मैं अपना ।

तरह-तरह से दिए सीता को प्रलोभन,
तरह-तरह से की प्रशंसा उनकी,
कहा, मेरी बहुत सी उत्तम स्त्रियाँ हैं,
मेरी पत्नी बन, पटरानी बन उनकी ।

वल्कल वस्त्रधारी राम को लेकर,
बोला, क्या करेगी तू, हे सुभगे !
तेरे हरण से वो निस्तेज हो गया,
वन में फिर रहा है भागे-भागे ।

बल, पराक्रम, धन और यश में,
राम कदापि नहीं है मेरे समान,
मुझे तो अब देख भी नहीं सकता,
कैसे तुझे यहाँ से ले जाएगा राम ?

द्वादश: सर्ग: से सप्तदश: सर्ग:

अपने और रावण के बीच तृण रख,
शुचिस्मिता सीता बोली रावण से,
पापी जैसे ब्रह्म नहीं पा सकते,
तू भी कभी नहीं पा सकता मुझे ।

उत्तम कुल में उत्पन्न हुई मैं,
पवित्र कुल में आई में ब्याह कर,
पतिव्रता हूँ मैं, मेरे पति हैं राम,
ऐसा दुष्कर्म करूँगी आशा मत कर ।

दूसरे की पत्नी और सती स्त्री हूँ,
तेरी उपयुक्त भार्या नहीं बन सकती,
श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण कर तू,
रक्षा करनी चाहिए तुझे पर-स्त्री की ।

चञ्चल मन वाले अजितेन्द्रिय पुरुष,
अपमानित होते रहते पग-पग पर,
याद रख अजितेन्द्रिय राजा के कारण,
रह जाते बड़े-बड़े राज्य उजड़ कर ।

यह लंका भी शीघ्र नष्ट हो जाएगी,
लुभा नहीं सकता तू कैसे भी मुझे,
जैसे सूर्य से प्रभा पृथक न होती,
मैं भी अलग न हो सकती राम से ।

यदि तू अपना कल्याण चाहता,
तो मुझे लौटा दे श्रीराम को तू,
लंका को नष्ट होने देना न चाहता,
तो उनको अपना मित्र बना ले तू ।

कठोर वचन बोलने लगा तब रावण,
बोला, मेरे समझाए तू नहीं समझती,
तेरी आसक्ति वश तुझे मारता नहीं,
वरना है तो तू वध करने योग्य ही ।

तेरे लिए मैंने जो अवधि निश्चित की,
दो महीने बचे हैं उसे समाप्त होने में,
तब तक तूने यदि स्वीकारा न मुझे तो,
तेरा वध कर, कर दिए जाएँगे टुकड़े ।

देव और गन्धर्व कन्याएँ,
जो आई थी रावण के साथ,
दुखी हो रहीं सीता को देखकर,
मूक दर्शक बन दे रहीं साथ ।

उनसे मूक सान्त्वना पाकर सीता,
कहने लगीं रावण के हित की बात,
बोली, लंका में कोई तेरा हितैषी नहीं,
जो तुझे रोक ले पकड़कर तेरा हाथ ।

तेरे अतिरिक्त तीनों लोकों में,
ऐसा पुरुष कहीं कोई नहीं होगा,
जो शची सी राम की पत्नी सीता,
उसे पाने की कल्पना करता होगा ।

हे राक्षसाधम ! तेरी पापपूर्ण बातें,
क्या इनका फल तू नहीं भोगेगा,
क्षुद्र खरगोश सा वन मैं तू कब तक,
हाथी सम राम के सामने टिकेगा ?

जिन पापी आँखों से तू मुझे देखता,
क्यों नहीं निकल कर गिर जाती,
जिस जिह्वा से तू मुझसे बोलता,
गलकर नीचे क्यों गिर नहीं जाती ?

श्रीराम का आदेश नहीं होने से,
और तपश्चर्या की रक्षा के कारण,
भस्म करने में समर्थ होने पर भी,
मैं तुझे भस्म नहीं कर रही, रावण !

बुद्धिमान श्रीराम की पत्नी मैं,
अपहृत नहीं की जा सकती थी,
शायद इसी तरह तेरा नाश होना है,
इसीलिए ये रचना रची विधि की ।

रावण ने तब कहा राक्षसियों से,
जैसा चाहो लो उपाय काम में,
डरा-धमकाकर या दण्ड देकर,
सीता को कर लो मेरे वश में ।

चला गया रावण उन्हें कहकर,
तो राक्षसियाँ करने लगी जतन,
गुणगान करने लगी एक रावण का,
उसके वंश का करती वर्णन ।

बोली, ब्रह्मा के पूर्व में हुए छह पुत्र,
पुलस्त्य उनका चौथा मनस्वी पुत्र था,
विश्रवा का जन्म हुआ पुलस्त्य से,
प्रताप में जो अपने पिता तुल्य था ।

रावण है उन्ही विश्रवा का पुत्र,
रण में शत्रुओं को रुलाने वाला,
क्यों नहीं तू उन्हें स्वीकार कर लेती,
राम नहीं यहाँ पर आने वाला ।

दूसरी राक्षसियों भी करने लगीं,
रावण के गुणों का यशगान,
तैतीस देवताओं को जीता उसने,
बल में नहीं कोई उसके समान ।

मन हटा ले तू राम से अपना,
अतुल सम्पदा भोग रावण के साथ,
राज्य-भ्रष्ट, असफल मनोरथ, नपुंसक,
क्या करेगी तू उस राम के साथ ?

सीता बोलीं, पापपूर्ण हैं बातें तुम्हारी,
राम पति हैं मेरे, पूज्य हैं मेरे,
चाहे दीन हों या राज्य हीन हों,
श्रीराम हर हाल में प्रिय हैं मेरे ।

शची, अरुन्धती, रोहिणी, लोपमुद्रा आदि,
अनुगमन करतीं जैसे अपने पति का,
वैसे ही श्रीराम को अपना पति समझ,
मैं भी अनुगमन करतीं हूँ उन्हीं का ।

सीता दुखी हो तब दूर जा बैठीं,
वहाँ भी एक ने धमकाया उनको,
अब तक जो तूने कहा ठीक है,
पर अति उचित न कभी किसीको ।

तूने अब भी जो बात न मानी,
हम सब मिल मार डालेंगी तुझको,
युवा अवस्था थोड़े दिनों की होती,
क्यों व्यर्थ कर रही तू इसको ?

व्याकुल हो सीता रोने लगीं,
कोई सहारा दिख पड़ा न उनको,
थर-थर काँप रहीं राक्षसियों के बीच,
जैसे भेड़ियों के बीच अकेली हिरनी हो ।

कह रहीं, बिना समय मरता न कोई,
वरना क्या राम बिना मैं जीवित रहती,
कैसे पाप-कर्म किये पूर्वजन्म में मैंने,
पराधीन मैं, प्राण भी तज नहीं सकती ।

चाहे टुकड़े-टुकड़े कर डालो मेरे,
चाहे जलती अग्नि में झोंक दो,
रावण की बात मैं मान नहीं सकती,
चाहे तुम सब कुछ भी कर लो ।

बुद्धिमान, कृतज्ञ, दयालु, सदाचारी,
सारे संसार में प्रसिद्द हैं श्रीराम,
पर क्यों ऐसे निष्ठुर हो गए अब,
मेरे ही भाग्य दोष का परिणाम ।

चौदह सहस्त्र राक्षस मार डाले,
जनस्थान में अकेले ही जिन्होंने,
क्या वे मेरी रक्षा न करेंगे,
मैं यहाँ बन्दी हूँ, यदि वे जान लें ?

समुद्र सुखाकर जला डालेंगे लंका,
रावण का यश और नाम मिटा देंगे,
मैं जीवित हूँ यदि वे जान लें,
अवश्य ही मेरी वे सुधि लेंगे ।

पर लगता है वियोगजन्य शोक से,
प्राणत्याग परलोक सिधार गए श्रीराम,
या मुनिवृति धारण कर ली हो उन्होंने,
रावण ने छल से हर लिए हों प्राण ?

तदन्तर रावण को यह हाल बताने,
कुछ राक्षसियाँ चली गयीं वहाँ से,
कुछ फिर से धमकाने लगीं उन्हें,
समझाने-बुझाने लगीं तरह-तरह से ।

अष्टादश: सर्ग: से त्रयोविंश: सर्ग:

त्रिजटा नामक एक वृद्ध राक्षसी तब,
कहने लगी अपना स्वप्न उन सबसे,
राक्षस मरेंगे, इसका पति विजयी होगा,
प्रतीत होता है मेरे देखे स्वप्न से ।

बोली, मैंने देखा एक दिव्य पालकी में,
श्वेत माला और श्वेत वस्त्र पहने,
राम और लक्ष्मण लंका में आ गए,
सीता साथ में सफेद साड़ी पहने ।

समुद्र से घिरे एक श्वेत पर्वत पर,
बैठे हुए देखा मैंने स्वप्न में उनको,
श्रीराम के साथ सीता ऐसे लग रही,
जैसे सूर्य के साथ उसकी प्रभा हो ।

चले गए श्रीराम, लक्ष्मण के साथ,
चतुर्दन्त विशाल हाथी पर बैठकर
रावण को भी देखा मैंने स्वप्न में,
तेल में डूबा लोट रहा पृथ्वी पर ।

फिर देखा मूँड मुडा, काले वस्त्रो में,
पुष्पक विमान से गिरा पृथ्वी पर,
स्त्रियाँ रावण को खींच रही है,
बैठा दिखा फिर गधे जुते रथ पर ।

फिर देखा तेल पीते, हँसते, नाचते,
भ्रान्त चित्त, व्याकुल, गधे पर सवार,
दक्षिण दिशा की ओर जा रहा रावण,
कुम्भकर्ण को भी देखा इसी प्रकार ।

रावण के समस्त पुत्रों को भी देखा,
मूँड मूँडाए और डूबे हुए तेल में,
फिर शूकर, सूँस और ऊँट पर सवार,
देखे रावण, मेघनाद, कुम्भकर्ण मैंने ।

रावण, उसका भाई और पुत्र,
जाते दिखे सब दक्षिण दिशा में,
केवल विभीषण को इनसे अलग,
सफेद छत्र को ताने देखा मैंने ।

देखा, श्रीराम के किसी वानर दूत ने,
जला डाली रावण द्वारा रक्षित लंका,
तुम सब यहाँ से हट जाओ दूर,
शीघ्र राम से मिलन होगा सीता का ।

वन में साथ देने वाली प्रिय सीता की,
भर्त्सना-तर्जना राम सहन न करेंगे,
अच्छा है अनुग्रह की याचना करें हम,
तो श्रीराम हमें कोई कष्ट न देंगे ।

हनुमानजी ने भी सुनी सब बातें,
सोचने लगे धैर्य बंधाएँ सीता को,
यदि आश्वासन दिए बिना लौट जाऊँ,
दोषपूर्ण आचरण कहा जाएगा उसको ।

अपने को निसहाय मानकर सीता,
निश्चय ही त्याग देंगी अपने प्राण,
और क्या उत्तर दूँगा मैं पूछने पर,
जब मुझसे पूछेंगे सब बात श्रीराम ?

निर्णय किया वो प्रतीक्षा करेंगे,
सान्त्वना देने के उचित अवसर का,
उन राक्षसियों की नजर बचाकर,
सोचा सीता के समक्ष जाने का ।

तदन्तर हनुमानजी करने लगे,
दशरथजी और श्रीराम का बखान,
कैसे उन्हें वनवास जाना पड़ा,
कैसे सुग्रीव से हुआ मिलान ।

बाली को मार, राज्य दिया सुग्रीव को,
अनेक वानर भेजे गए उन्हें खोजने,
सम्पाति ने बताया पता लंका का,
सौ योजन समुद्र पार किया मैंने ।

श्रीराम के मुख से जैसा सुना,
उस देवी के विषय में मैंने,
चुप हो गए हनुमान ये कह,
'वैसी ही सीता देख ली मैंने' ।

विस्मित हो देखने लगीं सीता,
ये स्वप्न तो नहीं लगीं सोचने,
तब एक नीची शाखा पर उतर,
हनुमानजी ने प्रणाम किया उन्हें ।

पूछा सीता से कौन हैं आप,
यदि सीता हो तो उत्तर दो मुझे,
दीन दशा, तपस्यायुक्त वेश देख,
आप सीता ही हैं लगता है मुझे ?

हनुमानजी के वचनों को सुनकर,
और श्रीराम की कीर्ति से हर्षित हो,
सीताजी ने परिचय दिया अपना,
बताया कैसे लायी गयी वहाँ वो ।

फिर बोलीं दुरात्मा रावण ने,
दो माह का समय दिया है मुझे,
इस समय अवधि के बीतने पर,
अपने प्राण त्यागने होंगे मुझे ।

उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले हनुमानजी,
दूत बनकर आया हूँ, उनकी आज्ञा से,
श्रीराम कुशल से हैं, आपकी कुशल पूछी,
लक्ष्मणजी ने प्रणाम भेजा चरणों में ।

इस परस्पर भेंट होने से उनमें,
स्नेह और विश्वास पैदा हो गया,
कुछ और निकट आ गए हनुमान,
सीता का मन शंकित हो गया ।

अपने पर सन्देह करते देख हनुमानजी,
बोले, आप जो समझ रहीं नहीं हूँ मैं,
सन्देह दूर कर विश्वास करें आप,
रावण का दूत या रावण नहीं हूँ मैं ।

दिखलाई श्रीराम की दी हुई अँगूठी,
सीताजी हर्षित हो गईं, पहचान उसे,
उनकी प्रशंसा करतीं कहने लगीं,
विकट समुद्र लाँघ लिया सहल से ।

पूछने लगीं राम दुखी तो नहीं,
प्रयत्न करते तो हैं मेरे उद्धार का,
क्या वानरों सहित आएँगे सुग्रीव,
क्या धनुष उठेगा लक्ष्मण का ?

वे बोले राम को पता नहीं था,
अब मैं जाकर बतलाऊँगा उन्हें,
ऋक्ष और वानरों की भारी सेना ले,
शीघ्र लंका का विध्वंस करेंगे वे ।

चतुर्विंश: सर्ग: से षट्त्रिंश: सर्ग:

सीता बोलीं प्रारब्ध खींचता रहता,
देखो विपत्ति में सब विमूढ़ हो रहे,
रावण को मार कब मिलेंगे राम,
मेरे प्राण इसी आशा पर टिक रहे ।

दसवाँ मास चल रहा इस वर्ष का,
अब शेष दो माह ही बचे हैं बस,
विभीषण ने प्रयत्न किया कई बार,
पर रावण को नहीं आता समझ ।

चाहता नहीं वो मुझे लौटाना,
मृत्यु सवार है उसके सिर पर,
श्रीराम सब गुण सम्पन्न हैं,
कब करेंगे वे कृपा मुझ पर ?

हनुमान ने कहा राम आएँगे शीघ्र,
आपको अपने साथ ले जाएँगे वो,
वरना आप सवार हों मेरी पीठ पर,
अभी ले चलता हूँ यहाँ से आपको ।

रावण सहित लंका उठा ले जा सकता,
जैसे आया वैसे ही चला जाऊँगा पार,
आपको अभी साथ ले जा सकता,
आकाश मार्ग से ले जाऊँगा पार ।

सीता बोलीं, तुम्हारा वेग पवन सा,
मेरे लिए होगा वह अति दुष्कर,
समुद्र के जीव-जन्तु खा जाएँगे,
यदि गिर पड़ी मैं समुद्र में जाकर ।

मुझे साथ ले जाते हुए देखकर,
लंकावासी सन्देह करेंगे तुम पर,
राक्षस अवश्य तुम्हारा पीछा करेंगे,
तुम्हें जीतना पड़ेगा उनसे लड़कर ।

भयभीत हो गिर सकती मैं नीचे,
या गर्जन-तर्जन सुन जा सकते प्राण,
तब तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ हो रहेगा,
श्रीराम का भी क्षीण होगा मान ।

पकड़ लिया यदि राक्षसों ने मुझे,
तो फिर ऐसी जगह छिपा रखेंगे,
न कोई वानर आदि देख सकेगा,
न राम-लक्ष्मण ही खोज सकेंगे ।

श्रीराम के अतिरिक्त अन्य पुरुष का,
स्वेच्छा से मैं स्पर्श कर नहीं सकती,
उचित मुझे पातिव्रत्य धर्म का पालन,
यही श्रीराम की कीर्ति के अनुकूल भी ।

यह सुन प्रसन्न हो बोले हनुमानजी,
आपने यह सब अपने अनुरूप ही कहा,
इस स्थिति में आपके अतिरिक्त,
कौन स्त्री ऐसा कह सकती थी भला ?

मैंने जो साथ चलने के लिए कहा था,
अनेक कारण हैं उस प्रस्ताव के पीछे,
पहला श्रीराम का प्रिय करने की इच्छा,
दूसरा मेरा हृदय द्रवित हुआ स्नेह से ।

लंका दुर्गमनीय होने के कारण,
हर कोई प्रवेश कर नहीं सकता,
फिर समुद्र का लाँघना कठिन है,
लेकिन मुझे भरोसा अपने ऊपर था ।

श्रीराम को मेरे प्रति स्नेह है,
और मेरी उनके प्रति भक्ति,
इसिलिए चाहा आपको ले चलना,
इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं ।

आप नहीं चल रहीं मेरे साथ,
तो कोई निशानी दे दीजिए मुझे,
पहचान सकें जिसको श्रीराम,
ताकि विश्वास हो जाए उन्हें ।

तब एक चूड़ामणि दी सीताजी ने,
कहा इसे दे देना श्रीराम को,
फिर उन्हें जाने को तैयार देख,
बोलीं, कहना अब देर न करें वो ।

विचार करने लगे हनुमानजी,
एक छोटा सा कार्य रह गया,
सीताजी के तो दर्शन हो गए,
शत्रु की शक्ति जाँचना रह गया ।

मुख्य कार्य को सम्पूर्ण कर,
और उसे हानि पहुँचाए बिना,
अन्य और काम भी कर डाले,
उसका ही सफल दूत गिना जाना ।

सोचने लगे कि ऐसा क्या करूँ,
ठन जाए मुझमें और रावण में,
मुझे युद्ध क्षेत्र में खड़ा देखकर,
अपनी सेना और मेरा बल देख ले ।

यह सोच नष्ट करने लगे वाटिका,
कई वृक्षों को तोड़ डाला उन्होंने,
पक्षी करने लगे भीषण कोलाहल,
भय छा गया नगर वासियों में ।

निद्रा भंग हो गयी राक्षसियों की,
विशालकाय हनुमान को देखा सामने,
सीताजी से पूछने लगीं कौन है वो,
क्या उससे कुछ कहा सुना तुमने ?

वे बोलीं, राक्षसों की माया को,
जानते होंगे तुम राक्षस लोग ही,
होगा तुम में से ही कोई राक्षस,
भयभीत हो रही हूँ मैं स्वयं भी ।

भाग चलीं वे रक्षसियाँ वहाँ से,
जो हुआ वहाँ जा बताया रावण को,
बोलीं एक विशालकाय वानर ने,
नष्ट कर दिया अशोकवाटिका को ।

अत्यन्त क्रोधित हो उठा रावण,
राक्षसों का एक दल भेजा उसने,
या तो मार डाले वहीं वानर को,
या उसे पकड़कर ले आए साथ में ।

शस्त्र लिए राक्षसों को झपटता देख,
हनुमानजी ने पैर पटके भूमि पर,
श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव की जय हो,
ऐसा कह टूट पड़े वे उन सब पर ।

मार डाला उन राक्षसों को उन्होंने,
जो बच रहे बोले रावण से जाकर,
हमारी सैन्य टुकड़ी को मार डाला,
बहुत दुष्ट और बड़ा वीर है वानर ।

उधर हनुमान सोचने लगे कि मुझे,
इनका चैत्य-प्रासाद[16] नष्ट करना चाहिए,
जा चढ़े उस चैत्य-प्रासाद पर हनुमान,
और नष्ट कर दिया अनायास उसे ।

[16] राक्षसों की यज्ञशाला जहाँ मद्य-मांस का भी प्रयोग होता था ।

श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव की जय बोल,
बोले, उनका दास पवनपुत्र-हनुमान हूँ मैं,
तुम्हारे देखते-देखते लंका ध्वस्त कर,
सीताजी को प्रणाम कर लौट जाऊँगा मैं ।

उधर प्रहस्त का पुत्र जम्बुमाली,
धनुष ले निकला नगर से बाहर,
विकराल, दुर्जेय माने जाना वाला,
चला अनेक आयुधों से सजकर ।

वाटिका के तोरण द्वार पर देख,
तीक्ष्ण बाण मारे हनुमान को उसने,
उन्होंने भी परिघ घुमाकर दे मारी,
जम्बुमाली के प्राण ले लिए जिसने ।

फिर सात मन्त्रि-पुत्र सेना ले निकलें,
मार डाले गए वे भी उनके द्वारा,
थप्पड़, लात, घूसों और नखों से,
किसी को रगड़-मसल कर मारा ।

विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस, भासकर्ण,
ये पाँच सेनापति चले फिर लड़ने,
चारों ओर से घेर लिया हनुमान को,
दुर्धर ने बहुत से बाण मारे उन्हें ।

पीड़ित हो सहसा उछलकर हनुमान,
जा चढ़े दुर्धर के उस रथ पर,
घोड़ों सहित चकनाचूर हो गया रथ,
दुर्धर भी मरा पृथ्वी पर गिरकर ।

शेष चारों सेनापति भी लड़े उनसे,
अपने-अपने आयुधों को लेकर,
उनका भी वही हाल किया उन्होंने,
मार डाला उनको भी एक-एक कर ।

उन पाँचों और सेना का संहार सुन,
पुत्र अक्षय कुमार को भेजा रावण ने,
बाणों की भीषण वृष्टि कर उन पर,
हनुमानजी की छाती वेध डाली उसने ।

उसका उत्तरोत्तर पराक्रम बढ़ता देख,
हनुमानजी ने ठीक न समझी उपेक्षा,
दोनों पैर पकड़, हवा में घुमाकर,
अक्षय कुमार को भूमि पर दे पटका ।

अक्षय कुमार के मारे जाने पर,
रावण ने भेजा पुत्र मेघनाद को,
इन्द्र के समान पराक्रमी इन्द्रजित्,
शीघ्र चल दिया युद्ध करने को ।

हनुमान और इन्द्रजित् दोनों ही,
बड़े वेगवान और रण-पण्डित थे,
सब प्राणियों का मन हरने वाला,
भीषण युद्ध वे दोनों करने लगे ।

कोई कमी न दिखी दोनों को,
एक-दूसरे के युद्ध कौशल में,
दोनों देवताओं से पराक्रमशाली,
लगे एक-दूसरे को हराने में ।

अमोघ बाण चलाकर भी मेघनाद,
हनुमानजी को विद्ध कर न सका,
तब उन्हें अस्त्रों से अवध्य जान,
पकड़ लिया उनको ब्रह्मास्त्र चला ।

ब्रह्मास्त्र से बन्धे हनुमानजी,
निश्चेष्ट हो गिर पड़े भूमि पर,
राक्षस उन्हें रावण के पास ले गये,
रस्सियों से कसके बाँधकर ।

रत्न-जड़ित स्फाटिक पत्थर के,
सिंहासन पर बैठा हुआ था रावण,
स्त्रियाँ चँवर आदि लिए खड़ी थीं,
चार मन्त्री भी ग्रहण किए आसन ।

तत्वज्ञ और बली मन्त्रियों से घिरा,
बहुत सुशोभित हो रहा था रावण,
हनुमानजी मुग्ध हो सोचने लगे,
अधर्म ही है बस रावण का दुश्मन ।

पीले नेत्रों वाले हनुमान को देख,
मन्त्री प्रहस्त से रावण ने कहा,
पूछो, कहाँ से और क्यों आया ये,
इस उत्पात का प्रयोजन है क्या ?

प्रहस्त ने आशवस्त करते हुए कहा,
सत्य बोलोगे तो मुक्त किए जाओगे,
असत्य बोलने का प्रयास करने पर,
निश्चित ही तुम मृत्यु-दण्ड पाओगे ।

हनुमानजी ने उन्हें सम्बोधित कर कहा,
तुम मुझे श्रीराम का दूत समझ लो,
सम्राट सुग्रीव का सन्देश लाया हूँ,
आपकी कुशल-क्षेम पूछते हैं वो ।

मैं पवनदेव का औरस पुत्र हनुमान हूँ,
समुद्र लाँघ कर आया सीता को खोजने,
घूमते-फिरते मैंने यहाँ देखा सीता को,
क्या आप समझते उचित किया आपने ?

धर्म और अर्थ को जानते हैं आप,
तप से पाया यह एश्वर्य आपने,
धर्मविरुद्ध, अनर्थकारी, विनाशक,
उचित नहीं आपको ऐसे कार्य करने ।

सामर्थ्य नहीं किसी देव या असुर में,
कर सके राम के क्रोध का अनुसरण,
उनका विरोध कर कोई रह नहीं सकता,
न ही उसे जीवित छोड़ेंगे लक्ष्मण ।

हे रावण ! मैंने जो कुछ कहा है,
उचित है और हितकारी सबके लिए,
मेरी बात मान लौटा दो सीताजी को,
अनुकूल धर्म की रक्षा के लिए ।

मत समझना सीता वश में हो गयी,
तुम उसे अपना काल ही समझना,
जैसे विष पचाया नहीं जा सकता,
असम्भव सीता को छिपाए रखना ।

तुम्हारे पन्जे में फँसी सीता को,
कालरात्रि ही समझना लंका के लिए,
दग्ध हो जाओगे सीता के तेज से,
मेरी बात मान लो लंका बचाने के लिए ।

क्रोधवश मूर्छित से रावण ने तब,
कहा वध कर दो इस वानर का,
अनुमोदन न कर, विभीषण ने कहा,
विवेकी राजा वध करते न दूत का ।

राजधर्म विरुद्ध, लोक में निन्दित,
अनुरूप नहीं आपसे वीर व्यक्ति के,
प्रसन्न हो, उचित अनुचित विचार,
फिर इस दूत को उचित दण्ड दें ।

और भी क्रुद्ध हो गया रावण,
सुनकर विभीषण की यह बात,
बोला, प्राणदण्ड इसे अवश्य मिलेगा,
पापी को मारना नहीं होता पाप ।

लंका -दहन

विभीषण ने फिर से कहा रावण से,
हे लंकेश्वर ! मेरे वचनों को सुनिए,
दूत सर्वदा और सर्वत्र अवध्य है,
सज्जनों का यह कहना मानिए ।

निस्संदेह यह बहुत बड़ा शत्रु है,
और बहुत बड़ा है अपराध भी इसका,
फिर भी इसका वध उचित नहीं है,
दण्ड और कुछ इसे दिया जा सकता ।

देशकालोचित वचन सुनकर रावण.
बोला, दण्ड तो मिलना ही चाहिए इसको,
वानरों को लान्गूल[17] अति प्रिय होता है,
सो इसके लान्गूल में आग लगा दो ।

लेकर जाए यहाँ से जला लान्गूल,
घुमाओ इसे चौराहों और नगर में,
और वस्त्र लपेट, तेल में भिगोकर,
आग लगा दो इसके लान्गूल में ।

अग्नि प्रदीप्त होने पर हनुमान ने,
सोचा लंका को भलीभाँति देख लें,
रात्रि में देख न पाए थे ठीक से,
सो दिन में सारी लंका देख लें ।

आग लगा, बंधे हुए हनुमान को,
वे राक्षस घुमाने लगे नगर में,
उधर हनुमानजी सोच रहे थे,
अब वो कौनसा ऐसा काम करें ?

अशोकवाटिका और सेना नष्ट की,
अब बच रहा है दुर्ग रावण का,
थोड़े से प्रयास से हो जाएगा सोच,
निश्चय किया दुर्ग पर चढ़ने का ।

जलते हुए लान्गूल को ले हनुमानजी,
भवनों और महलों पर घूमने लगे,
कूदते-फाँदते प्रहस्त के घर जा चढ़े,
और उसे अग्नि से ध्वस्त करने लगे ।

इसी तरह अन्य राक्षस-प्रमुखों के,
महल जला डाले उन कपिश्रेष्ठ ने,
मेघनाद आदि सबके महल जला डाले,
पर छोड़ा महल विभीषण का उन्होंने ।

घूम-घूमकर जला दिए सब घर,
साथ ही जल गया सब सामान भी,
फिर रावण के मुख्य महल पहुँच,
जला दिया उन्होंने उसको भी ।

लेकिन सारी लंका को जलती देख,
बहुत ही चिन्तित हो उठे हनुमान,
क्रोध में मनुष्य क्या न कर देता,
शत्रु नहीं कोई उसका क्रोध समान ।

बिना विचारे जला डाला सीता को,
मुझ निर्लज्ज, दुर्बुद्धि को धिक्कार,
क्या करूँ मैं अब क्या न करूँ,
दुखी हो करने लगे वे विचार ।

---

[17] प्राय: लान्गूल को पूँछ के रूप में वर्णित किया गया है लेकिन यह उचित नहीं लगता । यह पूँछ केवल नर-वानरों के ही दिखाई गई है, रुमा, तारा आदि वानर-स्त्रियों की पूँछ का कहीं पर उल्लेख नहीं मिलता । यह सम्भव नहीं कि वानरों के तो पूँछ हो, वानरियों के नहीं । लान्गूल वानरों का राष्ट्रीय चिन्ह था, उनके लिए श्रद्धा और आदर का प्रतीक, जिसका अपमान उनका जातीय अपमान था । रावण ने उसे ही जलाने के लिए कहा ।

तभी सुना उन्होंने चारणों को कहते,
कैसा दुष्कर कार्य किया हनुमान ने,
सभी राक्षसों के घर जला डाले,
लेकिन सीता नहीं जली आग में ।

सुरक्षित जानकर सीताजी को,
सफल मनोरथ हुए समझा उन्होंने,
सोचा एक बार पुन: उन्हें देखकर,
फिर लंका से जाना चाहिए उन्हें ।

सप्तत्रिंश: सर्ग: से एकचत्वारिंश: सर्ग:

सीताजी को जा प्रणाम किया उन्होंने,
अनुमति ली उनसे वापस लौटने की,
कहा, शत्रुओं को मारकर श्रीराम,
ले जाएँगे आपको यहाँ से शीघ्र ही ।

तब अरिष्ट नामक पर्वत पर चढ़,
उड़ चले उत्तर की ओर हनुमान,
वायु वेग से चले जा रहे थे,
बिना थके या रुके हुए हनुमान ।

जब महेन्द्रपर्वत कुछ ही दूर रह गया,
मेघ सी तेज गर्जना करी उन्होंने,
जाम्बवान बोले यह गर्जना बता रही,
कार्य-सिद्धि प्राप्त कर ली हनुमान ने ।

हनुमानजी ने पर्वत पर उतरकर,
सबको वह सुखद सन्देश सुनाया,
समस्त वानर मण्डली हर्षित हो गयी,
मानों उनका प्राण लौट आया ।

उछलते-कूदते चल दिए सब वानर,
जा पहुँचे सुग्रीव के राजकीय वन में,
अत्यन्त मनोहर और दुष्प्रवेश्य था वह,
सुग्रीव के मामा दधिमुख के रक्षण में ।

अंगद की अनुमति लेकर वानर,
मधु पीने, रसीले फल लगे खाने,
रक्षक जब रोकने लगे उन्हें तो,
वानर रक्षकों को लगे मारने ।

दधिमुख ने जा बताया सुग्रीव को,
तो समझ गए सुग्रीव सारी बात,
जान गए वानर सफल हो लौटे हैं,
असफल वानर न करते उत्पात ।

लौटकर दधिमुख ने कहा अंगद से,
मेरी धृष्टता क्षमा करें, हे युवराज !
आप ही हैं इस मधुवन के स्वामी,
मेरे रक्षकों से हुआ है अपराध ।

बोला, आपकी प्रतीक्षा कर रहे सुग्रीव,
बुला रहे शीघ्र ही आप सभी को,
चल दिए वे सब वानर वहाँ से,
जा सुनाया सारा वृतान्त राम को ।

दक्षिण समुद्र के दक्षिण तट पर,
बोले हनुमान, बसी हुई है लंका,
उस लंका में अशोकवाटिका में,
मैंने देवी सीता को बैठे देखा ।

आपके लिए ही जी रही हैं सीता,
राक्षसियाँ उन्हें डराती-धमकाती,
आपके वियोग में मृतप्राय सी,
दुखी हो अपना समय बिताती ।

चूड़ामणि उन्होंने दी है निशानी,
कहा है, एक माह मैं जीवित रहूँगी,
आ फँसी हूँ राक्षसों के फँदे में,
एक माह बाद मैं प्राण दे दूँगी

उस चूड़ामणि को देखकर राम,
अपनी आँखों से आँसू लगे बहाने,
बोले पाणिग्रहण के अवसर पर,
दी थी उन्हें महाराज जनक ने ।

सीता के बिना चूड़ामणि को देख,
बहुत व्याकुल हो उठे श्रीराम,
बोले, क्षण भर भी रुक नहीं सकता,
मुझे भी वहीं ले चलो, हनुमान ।

इति सुन्दरकाण्डम्

अथ युद्धकाण्डम्

अथ युद्धकाण्डम्

प्रथम: सर्ग: से नवम: सर्ग:

तदन्तर प्रसन्न हो बोले श्रीराम,
अकल्पनीय काम किया हनुमान ने,
पर मेरे मन में यह संकोच हो रहा,
कैसे अनुरूप पारितोषिक दूँ मैं इन्हें ।

आलिंगनरूप सर्वस्वभूत वस्तु है,
यही मैं देता हूँ हनुमान को,
यह कह आलिंगन कर राम ने,
कृतकृत्य कर दिया उनको ।

फिर हनुमान से वे कहने लगे,
समुद्र हतोत्साहित कर रहा मुझे,
सौ योजन फैला हुआ वो समुद्र,
कैसे पार कर सकेंगे हम उसे ?

तब सुग्रीव ने दी सान्त्वना उन्हें,
बोले, क्यों सन्तप्त हो रहे हैं आप,
सीता और शत्रु का पता चल गया,
उस समुद्र को भी हम लेंगे लाँघ ।

समुद्र लाँघकर जाएँगे हम लंका,
और मार डालेंगे आपके शत्रु को,
शोक त्याग, उत्साहयुक्त हों आप,
उत्साह ही सफलता दिलाता सबको ।

आपका प्रिय कार्य करने के लिए,
ये यूथपति तैयार हैं प्राण देने को,
इनमें इतनी शक्ति-सामर्थ्य है,
उखाड़कर ला सकते हैं लंका को ।

शोक शौर्य को नष्ट कर देता,
और पूर्ण होते सब कार्य शौर्य से,
शोक त्याग धारण करें क्रोध को,
हर कोई डरता क्रोधी व्यक्ति से ।

क्षत्रिय होकर जो उद्यमहीन होता,
वह सौभाग्यवान न हो सकता कभी,
और अधिक क्या कहूँ मैं आपसे,
शुभ शकुन देख रहा हूँ मैं सभी ।

स्वीकार कर सुग्रीव के वचन,
पूछने लगे हनुमान से श्रीराम,
कितने दुर्ग आदि हैं लंका में,
सबका यथार्थत: वे करें बखान ।

करने लगे लंका का वर्णन हनुमान,
बोले, खुशहाल हैं लोग लंका के,
बड़े-बड़े रथ और हाथी हैं वहाँ,
राक्षसगण निवासी हैं लंका के ।

चार विशाल द्वार दृढ़ किवाड़-युक्त,
अर्गल लगे जिन्हें बन्द करने को,
इषूपल[18] नामक यन्त्र लगे द्वारों पर,
शत्रु की सेना को मार भगाने को ।

[18] इषूपल तोप जैसा एक यन्त्र था जिससे गोलों की जगह तीरों और पत्थरों की वर्षा की जा सकती थी ।

लौहे से बनी सैकड़ों तोपे रखी हैं,
पहरा देते रहते वीर राक्षस दल,
चारों ओर बना सोने का परकोटा,
जिसे लाँघना कदापि न सरल ।

शीतल-स्वच्छ जलयुक्त अगाध खाई,
चारों ओर बनी है उस परकोटे के,
मछलियों और मगरों से परिपूर्ण,
सम्भव नहीं कोई उसे पार कर सके ।

चारों द्वारों के साथ बने हैं पुल,
उस खाई के पार जाने के लिए,
बड़े-बड़े यन्त्र रखे हैं पुलों पर,
राक्षस नियुक्त हैं चलाने के लिए ।

पुलों और नगरी की रक्षा करते,
राक्षस लोग उन यन्त्रों से,
खाई का जल बढ़ने लगता है,
यन्त्रों को संचालित करने से ।

हे राम ! ध्युत आदि व्यसन छोड़,
रावण कर रहा तैयारी युद्ध की,
सदा जागरूक रहता है रावण,
निगरानी करता रहता सेना की ।

बसी है एक सीधे खड़े पर्वत पर,
देवों के लिए भी दुर्गमनीय लंका,
नदी, पर्वत, वन और कृत्रिम-दुर्ग,
चार तरह के दुर्गों से युक्त है लंका ।

हे राघव ! समुद्र के उस पार,
बहुत दूर पर्वत शिखर पर,
वह दुर्गमनीय लंका बसी हुई है,
जिसे जीतना है अतिशय दुष्कर ।

लंका का सब वर्णन सुन श्रीराम,
बोले, अवश्य संहार करूँगा लंका का,
यही मूहर्त मुझे लग रहा रुचिकर,
प्रारम्भ करें हम युद्धयात्रा का ।

उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र है आज,
कल चन्द्रमा हस्त नक्षत्र में होगा,
समस्त सेना को सावधान कर दो,
आज ही हमें कूच करना होगा ।

दक्षिण को चल पड़े सेना सहित राम,
वानर ठीक-ठाक कर रहे मार्ग को,
राम, लक्ष्मण, सुग्रीव चल रहे बीच में,
जाम्बवान देख रहे पिछले भाग को ।

सह्य और मलय पर्वत पार कर,
जा पहुँचे वे सब समुद्र के पास,
टिक गयी सेना समुद्र के तट पर,
समुद्र लांघने की जोहने लगी बाट ।

उधर लंका में रावण चिन्तित था,
एक वानर तहस-नहस कर गया लंका,
मार डाले बड़े-बड़े राक्षस वीर उसने,
अपने पराक्रम का बजा दिया डंका ।

पूछने लगा उसे क्या करना चाहिए,
राक्षसगण करें इस बात पर विचार,
विचार ही विजय पाने की कुन्जी,
उचित अभी राम के विषय में विचार ।

बोला, उत्तम, मध्यम और अधम,
तीन प्रकार के लोग होते दुनिया में,
उनके गुण और दोष बतलाता हूँ,
जो सहायक उनका निर्णय करने में ।

योग्य व्यक्तियों से परामर्श कर,
प्रारम्भ करता जो कार्य का,
पुरुषार्थ परमात्मा के सहारे के लिए,
ऐसा पुरुष उत्तम कहा जाता ।

अकेला ही विचारता ऊँच-नीच,
लेकिन सहारा लेकर धर्म का,
अकेला ही शुरु कर देता कार्य,
मध्यम पुरुष वो कहलाता ।

बिना विचारे गुण-दोष और धर्म,
सोचता कर लूँगा मैं अकेला ही,
फिर छोड़ दे जो काम बीच में,
कहा जाता अधम पुरुष उसे ही ।

सलाह भी होती तीन तरह की,
उत्तम, मध्यम, और अधम,
मन्त्रीगण जिसमें एकमत हो,
शास्त्र सम्मत, वो सलाह उत्तम ।

जिस विचार का निर्णय करने में,
आरम्भ में हों मन्त्री अनेक मत,
लेकिन अन्त में एकमत हो जाएँ,
ऐसी सलाह कही जाती है मध्यम ।

सम्मति एक-दुसरे के विरुद्ध,
और परामर्शदाता न हों एकमत,
एकमत हों पर अकल्याणकारी,
ऐसी सलाह कही जाती है अधम ।

ऐसा कह रावण बोला मन्त्रियों से,
विचारकर मेरा कर्त्तव्य बताएँ मुझे,
राम सहस्त्रो शूरवीर वानरों के साथ,
चला आ रहा है लंका को घेरने ।

यह भी स्पष्ट और निश्चित है कि राम,
नीतिबल या दिव्य अस्त्रों के बल पर,
अनुज लक्ष्मण और वानर सेना के साथ,
सहज ही आ जाएगा समुद्र पार कर ।

वे महाबली राक्षस हाथ जोड़कर बोले,
बैठे रहें निश्चिन्त होकर आप,
उन वानरों के लिए इन्द्रजित बहुत हैं,
अकेले ही उन्हें कर देंगे समाप्त ।

और कुछ राक्षस डींगे मारते बोले,
भला वानरों से हमे कैसा डर,
वो तो हम तब असावधान थे,
वरना क्या कर लेता वो वानर ?

एक ने कहा अपेक्षा योग्य नहीं,
हमारा अपमान किया जो उसने,
हम अकेले वानरहीन कर देंगे पृथ्वी,
यदि आप ऐसी आज्ञा दे दें हमें ।

कोई कह रहा मैं अकेले ही जाकर,
मार दूँगा राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को,
तलवार निकाल क्रोध में भरकर,
अपना-अपना बल दिखा रहे रावण को ।

तब उन्हें शांत करा, विभीषण बोले,
साम, दान आदि से जहाँ काम न बनता,
पराक्रम वहाँ पर काम आता है या,
जब शत्रु असावधान हो, या कहीं उलझा ।

राम सदा सावधान, जयाभिलाषी है,
देवसहाय प्राप्त और युक्त बल से,
जितक्रोध और अजेय राम को,
जीतने की इच्छा तुम करते कैसे ?

भयंकर समुद्र को लाँघ आने वाले,
हनुमान की क्या कभी कल्पना की थी,
राम के पास अद्‌भुत पराक्रमी सेना है,
अवज्ञा नहीं करनी चाहिए कभी ऐसे की ।

क्या अपकार किया था राम ने,
कि राक्षसराज ने भार्या हर ली उनकी,
पर-स्त्री की चाहना कीर्ति की नाशक,
सीता न बन जाए जड़ लंका-नाश की ।

लौटा देना चाहिए हमे सीता को,
इसके पूर्व कि श्रीराम चढ़ आएँ,
मैं आपके हित की कह रहा हूँ,
मेरी विनती है, मेरी बात मान जाएँ ।

अगले दिन विभीषण ने फिर समझाया,
कहा, बहुत अपशकुन हो रहे लंका में,
लोभ या मोहवश यदि कहा हो कुछ,
तो आप मेरा अपराध क्षमा कर दें ।

पर रावण ने उनकी बात न मानी,
बोला, सीता मिल न सकती राम को,
चाहे देवताओं को भी साथ ले आए,
रण में वो जीत न सकता मुझको ।

तदन्तर रावण ने सभा में जा कहा,
अनिंद्य सीता को हर लाया हूँ मैं,
क्या करूँ कि सीता लौटानी न पड़े,
राम और लक्ष्मण भी जीवित न रहें ।

यह सुन क्रुद्‌ध हो बोला कुम्भकर्ण,
हमसे परामर्श तब किया न आपने,
बिना सोचे-विचारे अनर्थ कर डाला,
अभी तक तुम्हें मारा न राम ने ?

अब जब तुम यह कर ही चुके,
तुम्हारे शत्रुओं से निपटूंगा मैं,
तुम्हारे सब शत्रुओं को मारकर,
सब कुछ ठीक कर दूँगा मैं ।

दशम: सर्ग: से चतुर्दश: सर्ग:

कुम्भकर्ण की बातों से क्रुद्‌ध जान,
राक्षस महापार्श्व सोच कर बोला,
हे शत्रुहन्ता ! नियन्ता तुम सबके,
कौन तुम्हारा नियन्ता हो सकता ?

पैर रख अपने वैरी के सिर पर,
विहार करो तुम सीता के साथ,
कुम्भकर्ण और मेघनाद के सम्मुख,
भला किसमें टिकने की औकात ?

प्रशंसा करते तब रावण बोला,
शायद राम नहीं जानता मेरे बल को,
भला कौन है वो जो जगाना चाहता,
गिरिगुहा में सोये हुए क्रुद्‌ध सिंह को ?

वज्रतुल्य सौ-सौ बाण छोडकर,
भगा दूँगा मैं राम को ऐसे,
मशाल जलाकर भगा दिया जाता,
किसी जंगली हाथी को जैसे ।

राक्षसराज रावण की डींग और,
कुम्भकर्ण के निरर्थक वचन सुनकर,
विभीषण बोले क्यों लाए हो तुम,
विषधारी नागिन सी सीता को हरणकर ?

जब तक राम के वज्र से बाण,
राक्षसों के सिर नहीं काटते,
लौटा दो सीता को उन्हें तुम,
बिना बात क्यों वैर बढाते ?

क्या कुम्भकर्ण और क्या इन्द्रजित,
क्या महापार्श्व और क्या महोदर,
क्या कुम्भ और क्या निकुम्भ,
जीत नहीं सकते राम से लड़कर ।

लंका, राक्षस और परिजनों की सोच,
हे राक्षसराज ! मैं यह सम्मति देता,
लौटा दें सीता को आप श्रीराम को,
और निर्भय कर लें आप अपनी लंका ।

यह संवाद सुन रहा मेघनाद तब बोला,
क्यों इतने भयभीत हो रहे हैं आप,
पुलस्त्य वंश में कोई ऐसा न जन्मा,
जैसी बात कर रहे हैं, हे तात ! आप ।

बल ही क्या है उन राजपुत्रों में,
कोई साधारण राक्षस भी मार देगा,
मैं त्रिलोकीनाथ इन्द्र को पकड़ लाया,
क्या कोई इस बात को भुला देगा ?

तो फिर उन साधारण मनुष्यों के साथ,
क्या आप सोचते मैं लड़ न सकूँगा,
रण में मेरे सामने आते ही मैं,
क्या उन दोनों को मार नहीं दूँगा ?

विभीषण बोले अविवेकी और क्रूर,
बातें करते हो तुम बच्चों के जैसे,
ब्रह्मदण्ड और कालाग्नि के समान,
राम के बाण कोई सह सकेगा कैसे ?

अत्यन्त क्रुद्ध हो रावण बोला,
चाहे कोई विषधर के संग रह ले,
शत्रु के पक्षपाती, मित्ररुपी शत्रु,
कठिन है उसके साथ कोई रह ले ।

जानता सब जीव-जातियों का स्वभाव,
एक पर आपत्ति प्रसन्न करती औरों को,
जाति वालों से सदा भय बना रहता,
मेरा उत्कर्ष अच्छा नहीं लगता तुमको ।

ज्यों कमल-पत्र पर जल न ठहरता,
वैसी ही मैत्री अनार्य-पुरुषों के साथ,
पहले स्नेह दर्शाकर मैत्री कर लेते,
फिर नष्ट कर उसे देते आघात ।

हे विभीषण ! तूने जैसी बातें कहीं,
यदि कही होती किसी और ने,
मरवा डालता उसे इसी क्षण,
तुझे धिक्कार, तुझे त्यागा मैंने ।

विभीषण बोले भ्रान्ति है आपको,
बड़े भाई हैं, कुछ भी कह सकते,
पर आप आरूढ़ नहीं धर्म-पथ पर,
काल-अधीन सच्ची बातें नहीं सुनते ।

बहुत मिलते चिकनी-चुपड़ी कहने वाले,
हित की कड़वी कहने वाले होते बिरले,
रह सका न आपका अनिष्ट होते देख,
चुप कैसे रहे कोई देख घर को जलते ?

हे भाई ! जो भी हो आप पूज्य हैं,
क्षमा करना, मैंने कहा आपके हित में,
मैं अब जाऊँगा, कल्याण हो आपका,
सुखी हों आप मेरे यहाँ न रहने से ।

चार मन्त्रियों संग जा पहुँचे विभीषण,
राम और लक्ष्मण डेरा डाले थे जहाँ,
कहा सुग्रीव से रावण का छोटा भाई हूँ,
और कैसे-कैसे क्या-क्या हुआ वहाँ ।

बताया रावण सीता को हर लाया है,
उन्हें लौटा दें, मैंने उसे बहुत समझाया,
पर अपमान कर त्याग दिया मुझे उसने,
घर-बार छोड़ मैं राम की शरण आया ।

सुग्रीव ने जा बताया राम को,
कहा, मुझे तो कोई भेदिया लगता,
भेद जानने आया हम लोगों के,
या हम में भेद डालना चाहता ।

एक तो यह प्रकृति से राक्षस,
दूसरे भाई है यह रावण का,
तीसरे आया है शत्रु के पक्ष से,
कैसे विश्वास करें हम इसका ?

कपट बुद्धि से आया लगता है,
अवसर पाकर करेगा प्रहार,
दण्ड के अधिकारी हैं ये राक्षस,
इन सबको देना चाहिए मार ।

कपिराज सुग्रीव की बातें सुनकर,
राम ने पूछा प्रमुख वानरों से,
अंगद बोले ठीक नहीं सहसा विश्वास,
आ रहा है वो शत्रु के पास से ।

और भी प्रमुखों ने दी सम्मति,
फिर हनुमान ने प्रकट किए विचार,
बोले, कोई दुष्ट भावना न दिखी,
न ही मुखाकृति पर कोई विकार ।

आपके आक्रमण करने का उद्योग,
और रावण का मिथ्याचार देखकर,
बाली को मार, सुग्रीव को राज्य दिया,
आया लगता है वो यह सभी सोचकर ।

रावण के बाद राज्य पाने का लोभ,
मुझे लगता है होगा उसके मन में,
सोच-विचारकर आया है विभीषण,
मिला लेना उचित उसे अपने में ।

प्रसन्न हुए राम उनकी बात सुन,
बोले, यदि मित्र भाव से आया कोई,
उचित नहीं उसका त्याग करना,
चाहे फिर उसमें दोष हो कोई ।

सुग्रीव ने कहा पहले से भी बढ़कर,
बोले, संकट में साथ छोड़े भाई का,
कैसे कहा जा सकता कि निभाएगा,
ऐसा व्यक्ति साथ किसी और का ?

लक्ष्मणजी की ओर देखकर बोले राम,
सुग्रीव ने कही है जैसी बात,
शास्त्र पढ़े या वृद्धों की सेवा बिना,
कह नहीं सकता कोई ऐसी बात ।

एक सूक्ष्म बात विचारणीय है,
शत्रु होते हैं दो प्रकार के,
एक तो होते अपने कुल वाले,
दूसरे आस-पास के देशों के ।

विपत्ति में आक्रमण करते हैं,
ये शत्रु दोनों ही प्रकार के,
हो सकता है विभीषण आया हो,
कि रावण का संहार हो सके ।

हे तात ! होते नहीं सब कोई,
भाई भरत से, आज्ञाकारी मुझसे,
न ही सब कोई होते हैं,
हे लक्ष्मण ! स्नेही मित्र आप से ।

रक्षा न करना शरणागत की,
महान दोष होता ऐसा करने में,
शक्ति और पराक्रम का नाशक,
दुखों का मूल, अपयश इसमें ।

मेरा व्रत है, शरण में आकर,
'मैं आपकी शरण में हूँ' जो कहता,
प्राणिमात्र से ऐसा कहने वाले को,
मैं तुरन्त अभय प्रदान कर देता ।

हे कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ! सुनो,
वो चाहे रावण हो या विभीषण,
तुरन्त उसे मेरे पास ले आओ,
माँग रहा है वो मुझसे शरण ।

पञ्चदश: सर्ग: से अष्टादश: सर्ग:

चरणों में गिर पड़े विभीषण,
राम ने उठा गले लगाया उन्हें,
विभीषण ने कह सुनाई सब बातें,
कहा अब से आपके अधीन हूँ मैं ।

फिर उनके पूछने पर विभीषण,
बतलाने लगे सब बातें राम को,
बोले, देव, दानव आदि से अवध्य,
कोई मार नहीं सकता रावण को ।

कुम्भकर्ण हमार मंझला भाई है,
रावण से छोटा और बड़ा मुझसे,
अत्यन्त बलवान और महातेजस्वी,
लड़ सकता है वो इन्द्र से ।

रावण के सेनापति प्रहस्त ने किया था,
कैलास के राजा मणिभद्र को पराजित,
अन्तर्धान होकर मारा करता शत्रुओं को,
रावण का महाबलशाली पुत्र इन्द्रजित ।

इनके अतिरिक्त रावण के सेनापति,
महोदर, महापार्श्व और अकम्पन,
लोकपालों जैसे पराक्रमी हैं ये,
युद्ध में इन्हें साथ रखता रावण ।

विभीषण की बात सुनकर राम,
और मन-ही-मन उन पर विचारकर,
बोले, लंकाधीश बनाऊँगा मैं तुम्हे,
परिजनों सहित रावण को मारकर ।

अपने प्राण बचाने के लिए,
चला जाए रसातल या पाताल में,
चाहे ब्रह्माजी के पास चला जाए,
अवश्य ही उसे मार डालूँगा मैं ।

तीनों भाईयों की शपथ खा कहता,
उसे मारे बिना अयोध्या नहीं जाऊँगा,
आशवस्त हो विभीषण बोले उनसे,
प्राणपण से आपकी सहायता करूँगा ।

गले लगा विभीषण को राम ने,
लक्ष्मण से समुद्र जल मँगवाया,
और प्रसन्न हो लक्ष्मण के हाथों,
विभीषण का राज्याभिषेक करवाया ।

पड़ाव डाले थी जब सुग्रीव की सेना,
रावण का गुप्तचर शार्दुल वहाँ आया,
ऋक्ष और वानरों की सुग्रीव सेना,
बहुत विशाल है रावण को जा बताया ।

महाराज दशरथ के वे दोनों पुत्र,
उत्तम आयुधों को हैं धारण किए,
सुग्रीव का साथ पाकर वे आए हैं,
सीता को साथ ले जाने के लिए ।

व्याकुल हो रावण ने सुग्रीव को,
सन्देश भिजवाया अपने दूत शुक से,
कुलीन और बलवान हो तुम सुग्रीव,
क्या फायदा मुझसे वैर लेने से ?

ऋक्षराज के पुत्र, पौत्र ब्रह्मा के,
इस नाते मेरे भाई के समान,
लौट जाओ अपनी किष्किन्धा,
हारकर व्यर्थ सहोगे अपमान ।

राम से तुम्हें कोई लाभ न होगा,
हानि नहीं कोई साथ न देने से,
हरण किया जो मैंने सीता का,
क्या प्रयोजन भला तुम्हें इससे ?

शुक सुना रहा था जब सन्देश,
वानरों ने पकड़ लिया उछलकर,
घूँसे मारने लगे वानर जब उसको,
बोला मत मारो, आया हूँ दूत बनकर ।

छुड़वा दिया श्रीराम ने उसे,
पूछने लगा क्या कहूँ रावण को,
सुग्रीव ने कहा जाकर कहना उसे,
मार ही डालने लायक है वो ।

कहना, न तो तुम मेरे मित्र हो,
न दया के पात्र, न उपकर्ता हो,
मेरे प्रिय राम के शत्रु होने से,
मेरे लिए तुम मेरे भी शत्रु हो ।

तभी अंगद ने कहा मुझे लगता है,
दूत नहीं, ये है रावण का गुप्तचर,
फिर मारने लगे वानर पकडकर उसे,
राम ने छुड़ा दिया उसे दूत कहकर ।

तब सुग्रीव और हनुमान दोनों ने,
कहा विभीषण से कोई उपाय बताएँ,
कैसे ऋक्ष और वानर की वह सेना,
समुद्र को पार कर लंका तक जाए ?

विभीषण ने कहा महाराज श्रीराम,
जाकर समुद्र से विनती करें,
समुद्र मार्ग दे दे उस सेना को,
ऋक्ष और वानर पार जा उतरें ।

पसन्द आया राम को भी सुझाव,
लेट गए समुद्र-किनारे कुश बिछाकर,
या तो आज समुद्र से पार हो जाएँगे,
या मैं दे दूँगा अपने प्राण यहाँ पर ।

सावधानी से नियमपूर्वक तीन दिन,
श्रीराम करते रहे समुद्र की प्रतीक्षा,
बहुत प्रयत्न किया प्रसन्न हो समुद्र,
पर समुद्र ने कोई उत्तर न दिया ।

तब क्रोधित हो राम बोले लक्ष्मण से,
शान्ति से जीत का डंका नहीं बजता,
मेरे धनुष और बाणों को उठा लाओ,
मैं जल सुखा डालूँगा आज इसका ।

श्रीराम को क्रुद्ध देख कहा नल ने,
मैं समुद्र पर पुल का करूँगा निर्माण,
तुरन्त नियुक्त किए गए सैकड़ों वानर,
एकत्र करें सब आवश्यक सामान ।

वे विशालकाय वानरयूथपति ले आए,
पर्वत-शिखरों और वृक्षों को उखाड़कर,
हाथी जैसे भारी पत्थरों को तोड़-तोड़,
लाने लगे वे यन्त्रों का प्रयोग कर ।

नल ने बना दिया समुद्र पर पुल,
देखा सभी ने आश्चर्य चकित हो,
लम्बा-चौड़ा, सीधा और बड़ा दृढ़,
ऊँचा-नीचा न होकर समतल था वो ।

चारों मन्त्रियों सहित गदा हाथ में ले,
जा खड़े हुए विभीषण उस पुल पर,
फिर श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव,
साथ में अपनी सेना को लेकर ।

सेना सहित राम को समुद्र पार देख,
रावण ने कहा मन्त्रियों से अपने,
उस सेना के विषय में पता लगाएँ,
और क्या है राम-लक्ष्मण के मन में ?

पहचाने गए शुक और सारण,
विभीषण ने पहचान लिया उनको,
ले जाए गए वो श्रीराम के पास,
जीने की आशा रही न उनको ।

सच बता दिया श्रीराम को उन्होंने,
रावण के भेजे वे आए थे वहाँ,
राम ने कहा सब जान लिया हो तो,
जाकर बता दो सब रावण को वहाँ ।

यदि कुछ शेष रह गया हो तो,
एकत्र कर सकते हैं वे सूचना,
वरना पूछ लें विभीषण से वे,
दे देंगे विभीषण उन्हें वो सूचना ।

यद्दपि गुप्तचर थे वे दोनों,
पर राम ने छोड़ दिया दूत मानकर,
बोले, वध नहीं किया जाता,
शस्त्र रहित आया जो दूत बनकर ।

फिर बोले, हे राक्षसचरों ! तुम,
मेरा सन्देश जाकर रावण से कहना,
जिस बल-बूते हरण किया सीता का,
अब वो बल तुम मुझे दिखलाना ।

कहा, रावण को कहना देखोगे,
कल नष्ट हुई तुम अपनी लंका को,
द्वार, परकोटे और सेना नष्ट होगी,
परिजनों सहित मार दूँगा मैं तुमको ।

अभिनन्दन कर, जय बोल राम की,
लंका पहुँचकर वे बोले रावण से,
विभीषण ने बना लिया था बन्दी,
पर छोड़ दिया हमें राम ने ।

राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण,
एकत्र हैं ये चारों एक स्थान पर,
शूरवीर हैं वे लोकपालों की भाँति,
समर्थ फेंकने में लंका उखाड़कर ।

फिर बोले अकेला राम ही बहुत है,
आवश्यकता नहीं शेष तीनों की,
अजेय है उनकी यह वानर सेना,
लौटा दीजिए उन्हें आप सीताजी ।

एकोनविंश: सर्ग: से द्वाविंश: सर्ग:

रावण बोला अभी पीड़ित हो लौटे,
सो समझते सीता को लौटाना अच्छा,
भला कौन सा शत्रु ऐसा संसार में,
रण में जो मुझे हरा सकता ?

फिर जा चढ़ा राजप्रासाद पर वो,
देखने लगा अथाह वानर सेना को,
पूछने लगा कौन हैं सेनापति उनके,
और शूरवीर, पराक्रमी वानरों को ।

समुद्र पर पुल बाँधा जाना

देखा राम के पास विभीषण को बैठे,
लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान को देखा,
जाम्बवान, बालीपुत्र अंगद, सुषेण,
कुमुद, नील और नल को भी देखा

बहुत उद्विग्न हुआ रावण सब देख,
क्रोधित हो उठा शुक और सारण पर,
बोला, प्राण-दण्ड मैं दे देता तुम्हें,
रुक जाता पर पूर्वकृत उपकार सोचकर ।

शत्रु की प्रशंसा करते हो तुम,
धिक्कार है तुम दोनों पर,
निकाल दिया दोनों को उसने,
बोला, अब मुझे आना न नजर ।

फिर और गुप्तचर भेजे रावण ने,
विभीषण ने पहचान लिया उन्हें भी,
वानर तो उन्हें मार डाले दे रहे थे,
पर राम ने छुड़वा दिया उन्हें भी ।

कुटे-पिटे जब पहुँचे वे लंका,
सब हाल जा रावण को सुनाया,
कहा राम आ गए सुवेल पर्वत तक,
तो रावण ने मन्त्रियों को बुलवाया ।

मन्त्रणा कर उनसे रावण,
चला गया अपने अन्त:पुर को,
मायावी विध्युज्जिह्व को बुलाकर,
सीता के पास ले गया उसे वो ।

कहा उसे जब मैं सीता के पास हूँ,
तुम माया-रचित राम का सिर ले आना,
साथ ही ले आना एक विशाल धनुष,
जिसे तुम राम का ही धनुष बताना ।

सीता के पास जा बोला रावण,
तेरा अभिमान चूर-चूर कर डाला,
अब तो तुझे मेरी बनना ही पड़ेगा,
राम को तो मैंने मार ही डाला ।

आया था राम समुद्र पार कर के,
थकी सेना सो रही थी रात में,
प्रहस्त ने तभी आक्रमण कर दिया,
राम सहित सब मार डाले रात में ।

काट डाला उसने सिर राम का,
और विभीषण को बना लिया बन्दी,
लक्ष्मण वानरों संग भाग गया,
सुग्रीव और हनुमान की हड्डियाँ टूटीं ।

तोड़ डाली है जन्घा जाम्बवान की,
और मार डाला गया है अंगद भी,
शेष वानर-वीर भी है क्षत-विक्षत,
बाकी अब उनका कुछ रहा नहीं ।

मारा गया है तेरा पति इस तरह,
यह रहा उसका रक्त-रंजित सिर,
सीता को सुनाते एक राक्षसी से कहा,
विध्युज्जिह्व से कहो ले आए वो सिर ।

ले आया वो सिर और धनुष,
रख दिया उन्हें सीता के सामने,
विह्वल हो गयी सीता उन्हें देख,
विलाप करतीं आँसू लगीं बहाने ।

तभी एक राक्षस ने आ बताया,
प्रहस्त उनकी प्रतीक्षा कर रहा,
रावण के वहाँ से जाने के साथ ही,
उस माया का अन्त हो रहा ।

धोखे में डाली दुखी सीता को देख,
सरमा[19] ने सीता को किया आशवस्त,
बोलीं, हे सीता ! तू दुखी मत हो,
राम को कोई कर सकता न त्रस्त ।

शत्रु-सैन्य को मार भगाने वाले,
अतुल पराक्रम युक्त हैं राम,
कैसे कोई उन्हें मार सकता,
मरे नहीं हैं, जीवित हैं राम ।

प्रपन्च रचा था यह रावण ने,
धोखे में तुझे डालने के लिए,
शोक नष्ट हो गया अब तेरा,
सुन, शुभ समाचार है तेरे लिए ।

लक्ष्मण सहित राम आ ठहरे हैं,
समुद्र पार कर निकट लंका के,
रावण को मारकर शीघ्र श्रीराम,
सुखी होंगे प्राप्त कर वो तुझे ।

उधर रावण बोला सभा में जाकर,
आप सबने जो बताया वो सुना मैंने,
मुँह ताक रहे राम को महाबली समझ,
क्या पराक्रम नहीं रहा अब तुम में ?

तब उसके नाना माल्यवान ने कहा,
विद्या-प्रवीण, नीति से राज जो करता,
समयानुसार सन्धि-विग्रह करता शत्रु से,
वो राजा हर तरह निश्चिन्त हो रहता ।

शत्रु से दुर्बल या समान हो,
तो सन्धि कर ले वह शत्रु से,
पर अगर वो स्वयं बलवान हो,
तो ही युद्ध करना चाहिए उसे ।

हे रावण ! तदानुसार मुझे तो,
इस समय यही उचित लगता,
सन्धि कर लो तुम राम से,
और लौटा दो उन्हें उनकी सीता ।

पर रावण को नहीं लगा यह अच्छा,
बोला, कैसे बली समझते तुम उसको,
दीन-हीन और वानर ही उसके आश्रय,
मैंने तो रण में जीता कितनों को ।

जनस्थान से सीता का अपहरण कर,
अब कैसे लौटा दूँ मैं उसे राम को,
किसी के सामने झुक नहीं सकता,
चाहे हो जाए मेरा जो भी होना हो ।

समुद्र लाँघ लिया क्या बड़ी बात है,
जीते-जी वह लौटेगा न यहाँ से,
रावण का समय निकट आया देख,
माल्यवान आज्ञा ले, चले गए वहाँ से ।

त्रयोविंश: सर्ग: से सप्तविंश: सर्ग:

उधर पर्वत पर चढ़ राम ने,
देखना चाहा रावण की लंका को,
बोले, पाप तो कोई एक ही करता,
पर दण्ड भोगना पड़ता है सबको ।

[19] सरमा विभीषण की पत्नी थीं ।

त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बसी,
दिखाई दी उन्हें सुशोभित लंका,
शिखर पर बैठा रावण दिखा उन्हें,
चँवर ढुल रहा, सिर पर छत्र तना ।

सहसा सुग्रीव जा पहुँचे सामने,
रावण से बोले तू बच न सकेगा,
ऐसा कह, उसका मुकुट उतार,
बहुत दूर उसे पृथ्वी पर फेंका ।

गुथ्मगुथा हो लड़ने लगे दोनों,
पटकने लगे एक-दूसरे को नीचे,
कुछ माया रचना चाहता था रावण,
कि सुग्रीव छलांग लगा वापस आ गए ।

युद्ध के चिन्ह सहित उन्हें लौटा देख,
राम बोले परामर्श आपने किया न मुझसे,
अद्भुत साहस और बल आपने दिखाया,
पर उचित नहीं राजाओं को करना ऐसे ।

हम सबको चिन्ता में डाल आपने,
किया है यह काम जोखिम का,
हे मित्र ! यदि कुछ हो जाता तुम्हें,
तो सीता को पाकर भी मैं क्या करता ?

सब व्यर्थ हो जाता मेरे लिए,
कोई अनहोनी अगर घट जाती,
रावण को मार, अयोध्या लौट,
अपने प्राणों को त्याग देता मैं भी ।

सुग्रीव बोले, उस सीता-हर्ता को देख,
और अपनी शक्ति को जानकर,
कैसे रोक सकता था स्वयं को,
उस रावण को यूँ वहाँ बैठा देखकर ?

उनकी प्रशंसा करते राम उतर आए,
नीच आ निरीक्षण किया सेना का,
उत्साहित कर सेना को दोनों ने,
युद्ध करने की दी उन्हें आज्ञा ।

विजय मुहूर्त में सेना को साथ ले,
आगे-आगे राम, पीछे चले बाकी,
चारों ओर से लंका को घेर कर,
नियत स्थान पर जा डटे सभी ।

उत्तरी द्वार पर राम और लक्ष्मण,
नील, मैंन्द और द्विवद पूर्वी द्वार पर,
दक्षिण द्वार पर अंगद, ऋषभ आदि,
हनुमान औरों के साथ पश्चिम द्वार पर ।

वानरराज सुग्रीव खड़े थे बीच में,
सुशोभित हो वानर सेना के साथ,
इस तरह सेना खड़ी कर राम ने,
अंगद को भेजा रावण के पास ।

बोले, निर्भय हो संदेश दो रावण को,
कहना, दिखा अब बल अपना तू,
जिसके बलबूते धोखे से हरी सीता,
अब क्या उससे कर सकता तू ?

यदि तू मेरी शरण में आकर,
सौंप नहीं देता मैथिली को मुझे,
तो राक्षसों से शून्य कर यह लोक,
अपने बाणों से मार डालूँगा तुझे ।

अपने शौर्य और धैर्य का सहारा ले,
आकर युद्ध कर अब तू मुझसे,
छिप न सकेगा तू तीनों लोकों में,
अपने प्राण बचा न सकेगा मुझसे ।

तुरन्त अंगद जा उतरे रावण के सामने,
बोले बाली का पुत्र, अंगद हूँ मैं,
राम ने कहा है महल से बाहर निकल,
आ युद्ध कर मुझसे, मेरे हाथों मरने ।

मेरी शरण में आकर यदि तुम,
सीता को नहीं लौटाते हो मुझे,
मेरे हाथों तुम मारे जाओगे,
विभीषण बनेंगे राजा लंका के ।

क्रुद्ध हो रावण बोला पकड़ लो,
भागने न पाए ये वानर यहाँ से,
पकड़ा चार राक्षसों ने अंगद को,
पर अंगद उन्हें साथ ले उछले ।

जा चढ़े एक अटारी पर अंगद,
भूमि पर गिरे वे चारों एक साथ,
उड़ चले भयंकर नाद कर अंगद,
और पहुँच गए श्रीराम के पास ।

तब सेना को आज्ञा दी रावण ने,
निकल पड़ी सेना युद्ध करने को,
गर्जन कर टूट पड़ी वानरों पर,
वानर-सेना भी तत्पर थी लड़ने को ।

होने लगा घोर द्वन्द युद्ध,
अंगद से भिड़ गया इन्द्रजित,
महादेव और अन्धक के समान,
लड़ने लगे अंगद और इन्द्रजित ।

सम्पाति भिड़े प्रजन्घ राक्षस से,
हनुमान लड़ने लगे जम्बुमाली से,
मित्रघ्न से भिड़ गए विभीषण,
वानरराज सुग्रीव भिड़े प्रघस से ।

विरूपाक्ष से लड़ने लगे लक्ष्मण,
नील निकुम्भ से, गज तपन से,
अग्निकेतु, रश्मिकेतु, सुप्तघ्न,
और यज्ञकोप लड़ने लगे राम से ।

वानर और राक्षस जोड़े बनाकर,
द्वन्द युद्ध करने लगे आपस में,
बहने लगी रक्त की नदियाँ,
भीषण युद्ध होने लगा उनमें ।

इन्द्रजित ने अत्यन्त क्रुद्ध हो,
भीषण प्रहार किया गदा से,
चकनाचूर कर दिया उसका रथ,
अंगद ने भी अपनी गदा से ।

सम्पाति ने मार दिया प्रजन्घ को,
हनुमान ने तोड़ा रथ जम्बुमाली का,
बाणों से घायल हुए सुग्रीव ने,
वृक्ष मार वध कर डाला प्रघस का ।

विरूपाक्ष मरा लक्ष्मण के हाथों,
उन चारों को मार डाला राम ने,
इस तरह उस द्वन्द युद्ध में,
राक्षसों को हराया वानर सेना ने ।

रात्रि होने पर भी थमा न युद्ध,
भयंकर कोलाहल पड़ने लगा सुनाई,
चालाकी से इन्द्रजित अदृश्य हो गया,
वज्र से तीक्ष्ण बाणों की झड़ी लगाई ।

बींध डाला बाणों से राम-लक्ष्मण को,
और बाँध दिया उन्हें शर-बन्ध से,
मर्मस्थलों में पैने-पैने बाण मारकर,
लथपथ कर दिए उनके शरीर रक्त से ।

उन्हें ऐसे घायल और पीड़ित देख,
सुग्रीव आदि भर गए भय से,
विभीषण ने उन्हें ढाँढस बंधाया,
कहा, सत्यमार्गगामी मरते नहीं ऐसे ।

पिता के पास पहुँच इन्द्रजित ने,
कहा, मारे गए राम और लक्ष्मण,
बहुत प्रसन्न हुआ रावण यह सुनकर,
और आगे की सोचने लगा रावण ।

अष्टाविंश: सर्ग: से त्रयन्सित्रंश: सर्ग:

त्रिजटा आदि राक्षसियों को बुलाकर,
बोला, जाकर यह सीता को सुनाओ,
पुष्पक विमान में बैठाकर सीता को,
मृत राम और लक्ष्मण को दिखाओ ।

ले गयीं वे सीता को विमान में,
शर-शैय्या पर दिखे राम और लक्ष्मण,
व्याकुल हो सीता करने लगीं विलाप,
बोलीं हाय ! मारे गए राम-लक्ष्मण ।

त्रिजटा ने कहा ये मरे नहीं हैं,
बताती हूँ इसका कारण मैं तुम्हें,
यदि तुम विधवा हो गयी होती,
उड़ता नहीं ये विमान बैठाकर तुम्हें ।

बिना प्रमुख उद्यमहीन हो जाती सेना,
पर वानर वीर उनकी रक्षा कर रहे,
फीकी नहीं पड़ी उनके मुख की कान्ति,
ये तो बस थोडा मूर्छित हो रहे ।

घोर बाण-बन्धन में बंधे हुए वे दोनों,
रक्त से लथपथ, फुँकार रहे सर्प से,
इतने में थोड़े सचेत हुए श्रीराम,
लक्ष्मण को देख, आतुर हो रोने लगे ।

बोले, पराजित हो अचेत हैं लक्ष्मण,
क्या करूँगा अब मैं सीता को लेकर,
सीता समान स्त्री भले ही मिल जाए,
लक्ष्मण सा भाई मिलना है दुष्कर ।

यदि जीवित न रहे लक्ष्मण,
तो मैं भी अपने प्राण दे दूँगा,
अयोध्या लौट तीनों माताओं को,
लक्ष्मण बिना मैं क्या कहूँगा ?

धिक्कार है मुझ पापी अनार्य को,
जिसके लिए लक्ष्मण बलि दे रहा,
जैसे वन में मेरे पीछे आए थे तुम,
मैं तुम्हारे पीछे यमालय आ रहा ।

फिर उन्होंने कहा सुग्रीव से,
तुमने मेरे लिए जो करना था किया,
मैं अब आपको विदा करता हूँ,
जो जहाँ जाना चाहे, चला जाए वहाँ ।

इतने में सेना यथास्थान तैनात कर,
हाथ में गदा लिए विभीषण आ गए,
राम और लक्ष्मण की दशा देख,
वे भी बहुत ही व्याकुल हो गए ।

कोसने लगे वे दुष्ट राक्षसों को,
कपटबुद्धि से दिया धोखा जिन्होंने,
जिनके बलबूते चाही मान-प्रतिष्ठा,
पृथ्वी पर पड़ा देख रहा मैं उन्हें ।

विभीषण को सान्त्वना देते बोले सुग्रीव,
लंका का राज्य आपको अवश्य मिलेगा,
रावण और उसके पुत्र इन्द्रजित का,
मनोरथ कभी सफल होके न रहेगा ।

श्रीराम और लक्ष्मण की यह चोट,
विशेष हानि पहुँचाएगी न उन्हें,
अभी ये दोनों मूर्छा से जाग,
उठ पड़ेंगे रावण का वध करने ।

तभी अग्नि से देदीप्यमान गरुड़ को,
देखा वहाँ वानरों ने अपने बीच में,
अपना हाथ से दोनों का स्पर्श कर,
पहले सा कर दिया वैद्यराज गरुड़ ने ।

राम ने कहा आपके अनुग्रह से,
पहले सा ही बल पा लिया हमने,
पिता और पितामह से मिलने सी,
प्रसन्नता दी है आज हमें आपने ।

दिव्यमाला पहने चन्दनादि लगाए,
आभूषणों से अलंकृत कौन हैं आप,
गरुड़जी ने बताया आपका मित्र हूँ,
स्नेहवश आ गया मैं अपनेआप ।

चले गए फिर आकाश-मार्ग से,
हर्षित वानर करने लगे सिंहनाद,
राक्षसों सहित रावण ने भी सुना,
गरजते वानरों का वह तुमुल नाद ।

राक्षसों ने परकोटे पर चढ़कर देखा,
दोनों भाई दिखे बैठे हुए उन्हें,
राक्षसों से यह समाचार सुनकर,
चिन्ता होने लगी रावण के मन में ।

जिन अग्नि से तेजस्वी अस्त्रों से,
अनेक बार शत्रु का संहार किया,
मेरे दुर्भाग्य से वे निष्फल हो गए,
शत्रु को जीवन का दान दे दिया ।

धूम्राक्ष को भेजा तब रावण ने,
कहा मार डालो जाकर तुम उनको,
पश्चिम द्वार से निकला धूम्राक्ष,
सामने डटे देखा वानर सेना को ।

वृक्ष, शूल और मुदगरों से तब,
युद्ध करने लगे राक्षस और वानर,
तितर-बितर हो गयी राक्षसों की सेना,
तो धूम्राक्ष टूट पड़ा वानरों पर ।

एक बड़ी शिला उठा हनुमानजी दौड़े,
और धूम्राक्ष के सिर पर दे मारा,
गिर पड़ा अंग-भंग हो पृथ्वी पर,
राक्षसों ने मार्ग पकड़ा लंका का ।

रावण ने तब भेजा वज्रदंष्ट्र को,
वो मायावी एक बड़ी सेना ले निकला,
बहुत से अपशकुन हुए उस समय,
जब दक्षिणी द्वार से वह निकला ।

घोर युद्ध हुआ दोनों पक्षों में,
सिर धड़ से अलग हो गिरने लगे,
उत्साह से लड़ते हुए राक्षसों पर,
वानर शिलाओं से प्रहार करने लगे ।

अपनी सेना की दुर्दशा देख,
वज्रदंष्ट्र करने लगा बाणों की वर्षा,
अंगद ने तब उसी की तलवार छीन,
उसका सिर धड़ से अलग कर दिया ।

तब रावण ने अकम्पन को भेजा,
मेघ सा डील-डौल वाला था वो,
मेघ सा ही रंग, मेघ सी गर्जना,
महाबली और पराक्रमी था वो ।

समुद्र खलबला उठा जब वो निकला,
वानरों की सेना भी हो गयी भयभीत,
रक्त और लोथों से भूमि भर गई,
भयानक युद्ध हुआ दोनों पक्षों के बीच ।

कुमुद, नल, मैंन्द और द्विवद तब,
क्रुद्ध होकर लड़ने लगे वेग से,
सेना में आगे खड़े वीर राक्षसों को,
मार डाला उन्होंने बिना प्रयास के ।

क्रुद्ध अकम्पन तब बाण चलाता,
वानर वीरों को लगा मारने,
भाग खड़े हुए सब वानर वहाँ से,
कोई न आया उसके सामने ।

वानरों की यह दशा देख हनुमान,
आगे बढे अकम्पन से युद्ध करने,
उन्हें देख अन्य वानर भी आ गए,
अकम्पन लगा उन पर बाण बरसाने ।

चौदह बाण मारे हनुमान को उसने,
हनुमान भी झपटे एक वृक्ष उखाडकर,
अकम्पन के सिर पर दे मारा वृक्ष को,
मर गया अकम्पन वहीं पर गिर कर ।

क्रुद्ध होकर उदास हो गया रावण,
फिर मन्त्रणा कर भेजा प्रहस्त को,
लड़ने लगीं दोनों पक्षों की सेनाएँ,
मार डाला दोनों ने कई वीरों को ।

नरान्तक, कुम्भहनु, महानद, समुन्नत,
मारने लगे वानरों को मन्त्री प्रहस्त के,
द्विवद ने मार डाला शिला से नरान्तक,
कपि दुर्मुख ने समुन्नत के प्राण ले लिए ।

जाम्बवान ने एक भारी शिला उठा,
मारा महानद को छाती पर वार कर,
ऐसे ही मारा गया कुम्भहनु भी,
कपि तार के हाथों गिरा मरकर ।

वर्षा करने लगा बाणों की प्रहस्त,
वानर सेना का करने लगा संहार,
नील ने उसका धनुष तोड़ डाला,
फिर करने लगे दोनों वार पर वार ।

भयानक मूसल हाथ में ले प्रहस्त ने,
दे मारा उसे नील के मस्तक पर,
नील ने ले लिए प्राण प्रहस्त के,
एक शिला उठा दे मारी उस पर ।

चतुन्सित्रश: सर्ग: से षट्त्रिंश: सर्ग:

चिन्तित कर गया रावण को,
प्रहस्त का भी यूँ मारे जाना,
बोला, अब मैं ही जाऊँगा रण में,
शत्रु को मैंने यूँ ही तुच्छ माना ।

आज मैं उस वानर सेना को,
और लक्ष्मण सहित उस राम को,
दग्ध कर दूँगा अपने बाणों से ऐसे,
दहकती अग्नि जैसे करती वन को ।

आभूषणों की जगमगाहट से,
और स्वरूप से देदीप्यमान रावण,
आरूढ़ हो घोड़ों से जुते रथ पर,
चला रण में लड़ने को रावण ।

बजने लगे तुरही, शंख और ढोल,
स्तुति गाए जाने लगी रावण की,
उन्हें आते देख श्रीराम ने पूछा,
हे विभीषण ! यह सेना है किसकी ?

विभीषण ने परिचय दिया राक्षसों का,
बतलाया, 'महोदर' सवार हँ हाथी पर,
घोड़े पर सवार 'पिशाच' नाम का राक्षस,
'त्रिशिरा' सवार हो आ रहा वृषभ पर ।

मेघ के समान रूप वाला है जो,
छाती मांसल, विशाल और सुन्दर,
धनुष टंकारता चला आ रहा 'कुम्भ',
नागराज चिन्हित इसकी ध्वजा पर ।

मुकुट धारण किए हुआ है जिसने,
आ रहा चमचमाते कुण्डलों को पहन,
विन्ध्याचल की भांति भयंकर तनधारी,
सूर्य सा देदीप्यमान, यही है रावण ।

डट कर खड़े हो गए श्रीराम,
रावण करने लगा संहार सेना का,
सुग्रीव झपटे जो रावण पर,
बाण चला स्वागत किया उनका ।

मूर्छित हो गिर पड़े सुग्रीव,
वानर सेना भी आहत हुई बाणों से,
अनेक वीरों को धराशायी देख,
हनुमान आ डटे रावण के सामने ।

रावण के रथ पर चढ़ हनुमान,
बोले, देख प्रहार मेरे थप्पड़ का,
रावण बोला नि:शंक हो करो प्रहार,
मैं भी देखूँ बल तुम में है कितना ?

कपि बोले मेरा बल जानने,
स्मरण कर अपने पुत्र अक्षय का,
यह सुन क्रुद्ध हो रावण ने,
उनकी छाती में मारा एक चपेटा ।

बार-बार चक्कर खाने लगे हनुमान,
फिर सावधान हो उसे एक चपत लगाया,
कम्पायमान हो गया रावण ऐसे उससे,
मानों भूकम्प ने पर्वत को हिलाया ।

सचेत हो प्रशंसा करने लगा रावण,
बोला, शत्रु हो पर अतुल बल है तुममें,
कपि बोले, धिक्कार है मुझ पर,
थप्पड़ खाकर भी प्राण बचे है तुझमें ।

क्यों वृथा करता है प्रशंसा मेरी,
फिर एक बार तू मुझ पर वार कर,
फिर मैं तुझको यह घूँसा मारूँगा,
ले जाएगा तुझे जो यम के द्वार पर ।

जले-कुटे वचन सुन हनुमान के,
क्रोधित हो घूँसा मारा रावण ने,
मूर्छित होने लगे हनुमान तो,
रावण चल दिया लक्ष्मण से लड़ने ।

लक्ष्मण बोले आओ लड़ो मुझसे,
पराक्रम दिखा रहे क्या वानरों पर,
परस्पर भर्त्सना करने लगे दोनों,
फिर लड़ने लगे बाण चलाकर ।

सात बाण छोड़े रावण ने उन पर,
काट दिया जिन्हें लक्ष्मण ने बाणों से,
फिर लक्ष्मण ने चलाए रावण पर बाण,
रावण ने भी प्रतिकार किया बाणों से ।

फिर ब्रह्म प्रदत्त एक बाण रावण ने,
लक्ष्मणजी के मस्तक में मारा,
व्याकुल हो गए लक्ष्मण आघात से,
पर रावण का धनुष काट डाला ।

फिर तीन ऐसे पैने बाण मारे,
बहुत देर मूर्छा रही रावण को,
कठिनाई से सचेत हुआ जब,
ब्रह्म प्रदत्त शक्ति मारी उनको ।

बाण मार काटना चाहा लक्ष्मण ने,
पर शक्ति उनके काटे न कटी,
रावण द्वारा छोड़ी ब्रह्म प्रदत्त शक्ति,
लक्ष्मणजी की छाती में आके लगी ।

मूर्छित हो गिर पड़े लक्ष्मणजी,
रावण उन्हें उठाने को झपटा,
उठा न सका किसी तरह उन्हें,
तभी हनुमान ने आ मारा घूँसा ।

घुटनों के बल गिर पड़ा रावण,
हनुमान ले चले लक्ष्मण को उठा,
रावण फिर चलाने लगा बाण,
श्रीराम तत्क्षण पहुँच गए वहाँ ।

तीक्ष्ण बाण चलाए रावण ने उन पर,
राम ने भी किया बाणों से प्रतिकार,
तहस-नहस कर दिया रथ रावण का,
और उसके सारथि को भी दिया मार ।

फिर एक बाण उसकी छाती में मार,
विचलित कर दिया रावण को उन्होंने,
छूट गया रावण का धनुष हाथ से,
मुकुट भी उसका काट गिराया राम ने ।

श्रीहीन और थके हुए रावण से,
कहा राम ने, जा तुझे नहीं मारता,
जा लौट जा लंका को आज तू,
कल आकर करना फिर मेरा सामना ।

राम के बाणों के भय से व्याकुल,
चूर-चूर हो गया गर्व रावण का,
कहा राक्षसों से निगरानी करें लंका की,
और कुम्भकर्ण को दिया जाए जगा ।

सोया ही करता है वह कुम्भकर्ण,
राक्षसों में श्रेष्ठ और महाबलवान,
राम से पराजय का शोक मिटेगा,
जब वो उन सबके ले लेगा प्राण ।

रावण के मन्त्री यूपाक्ष ने जा,
सब वृतान्त सुनाया कुम्भकर्ण को,
भाई की पराजय की बात सुन,
बहुत क्रोध हो आया कुम्भकर्ण को ।

बोला, युद्धक्षेत्र में जाकर आज,
मार डालूँगा मैं राम और लक्ष्मण को,
सारी वानर सेना को भी मार,
फिर आऊँगा रावण के दर्शन को ।

लेकिन महोदर हाथ जोड़कर बोला,
पहले आप रावण की बातें सुन लें,
फिर उनका गुण-दोष विचारकर,
शत्रु से युद्ध कर उसे पराजित करें ।

चल दिया कुम्भकर्ण रावण से मिलने,
पूछा किसने भयग्रस्त किया आपको,
रावण बोला, तुम बेसुध पड़े रहते,
पता नहीं, राम ने त्रस्त किया मुझको ।

दशरथ का पुत्र, महाबली राम,
सुग्रीव और वानर सेना ले आया,
कर रहा हमारे कुल का नाश,
तुम्हारा ही सहारा बस बच पाया ।

हे महाबाहो ! अपने भाई के लिए,
तुम इस कठिन कार्य को करो,
पहले कभी ऐसा बेबस न हुआ,
अब तुम ही मेरी साहायता करो ।

अट्टहास करते बोला कुम्भकर्ण,
जो दोष दिख रहे थे उस समय हमें,
अब सब वो तुम्हारे सामने आ गए,
तब तुमने तनिक भी सुना न हमें ।

बहुत सी बातें कहने लगा कुम्भकर्ण,
कहने लगा नीति की बातें रावण से,
उचित, अनुचित समझा रावण को,
बोला, अब करो आपकी इच्छा हो जैसे ।

भौहें टेढ़ी कर, क्रुद्ध हो बोला रावण,
तुम्हारा बड़ा भाई, आचार्य तुल्य हूँ,
व्यर्थ बोलने से अब लाभ ही क्या,
करो वही अब जो मैं तुमसे कहूँ ।

रावण को रुष्ट देखकर कुम्भकर्ण,
बोला सन्ताप त्याग दीजिए आप,
भातृस्नेह से प्रेरित हो कहा मैंने,
रण में मेरा शौर्य अब देखना आप ।

सप्तत्रिंश: सर्ग: एवं अष्टात्रिंश: सर्ग:

पर्वत सा विशाल डील-डौल वाला,
कुम्भकर्ण निकला लंका से बाहर,
उस अवध्य, बली कुम्भकर्ण को देख,
डर कर इधर-उधर भागने लगे वानर ।

उसे देख विभीषण से पूछा राम ने,
विभीषण ने बताया कुम्भकर्ण है ये,
यम और इन्द्र को हरा दिया इसने,
विश्रवा का पुत्र, रावण का भाई है ये ।

उधर भागते हुए वानर वीरों को,
हौसला देते अंगद लगे कहने उन्हें,
ये कोई लड़ने वाला राक्षस नहीं है,
बनावटी पुतला है डराने को तुम्हें ।

फिर प्रोत्साहित करने लगे उन्हें,
बोले, वीर भागते नहीं कभी रण से,
कायर लोगों की सब हँसी उड़ाते,
वीरों को भला क्या डर मृत्यु से ?

लौट आए वे वानर वीर यह सुन,
उत्साह का संचार हो आया उनमें,
कुम्भकर्ण भी अत्यन्त क्रुद्ध हो,
शत्रुओं को मार लगा छितराने ।

बिना यूथपतियों के वानर सेना,
भयभीत हो आर्त्तनाद लगे करने,
क्रुद्ध हो लक्ष्मण आ पहुँचे वहाँ,
कई बाण कुम्भकर्ण को मारे उन्होंने ।

बाणों से पीड़ित, कुम्भकर्ण बोला,
मुझे सन्तुष्ट कर दिया तुमने,
इन्द्र भी सामने पड़ा न कभी,
पर तुम खड़े हो मुझसे लड़ने ।

अब लड़ना चाहता हूँ मैं राम से,
यह कह वह दौड़ा राम की ओर,
उसे राम की तरफ आते देखकर,
विभिषण लड़ने दौड़े उसकी ओर ।

विभिषण को सामने देख कुम्भकर्ण,
बोला, करो तुम क्षात्र धर्म का पालन,
भातृस्नेह का परित्याग कर तुम,
करो राम के लिए अपना बल-प्रदर्शन ।

समस्त राक्षसों में अकेले तुम्हीं ने,
की है धर्म और सत्य की रक्षा,
और जो रत रहते हैं धर्म में,
उन्हें कभी दुःख नहीं भोगना पड़ता ।

कुल की परम्परा बनाये रखने को,
अकेले तुम ही बस जीवित रहोगे,
मारे जाएँगे शेष सभी राक्षस,
राम की कृपा से राक्षसराज बनोगे ।

हो रहा हूँ मैं आसक्त युद्ध में,
अपना-पराया मुझे कुछ नहीं सूझता,
मैं चाहता हूँ कि बचे रहो तुम,
हट जाओ यहाँ से दो मुझे रास्ता ।

विभिषण बोले कुल रक्षा के लिए,
बहुत समझाया था मैंने सबको,
जब सुनी न किसी ने मेरी,
चला आया मैं छोड़ के उनको ।

ऐसा कह और आँखों में आँसू भरकर,
चले गए विभिषण एक ओर को,
तब अपनी ओर उसे आता देख,
राम ललकारने लगे कुम्भकर्ण को ।

कुम्भकर्ण बोला, हे राम ! तुम मुझे,
विराध, कबन्ध, खर, बाली न समझना,
ये लोहे का मुद्गर मेरे हाथ में है,
इसी से देव-दानवों का हुआ मरना ।

हे इक्ष्वाकुशार्दुल ! हे निष्पाप ! तुम,
पहले प्रहार कर बल दिखाओ अपना,
तुम्हारा पुरुषार्थ और पराक्रम देख,
फिर मैं दिखलाउँगा तुम्हें बल अपना ।

बाण-वृष्टि की जो राम ने उसपर,
अपने मुद्गर से कर दिया निष्फल,
तब राम ने वायव्यास्त्र को छोड़,
वो भुजा काट गिरा दिया मुद्गर ।

तब दूसरी भुजा से एक वृक्ष उखाड़,
उसे राम की ओर लेकर झपटा,
ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग कर राम ने,
काट डाली उसकी वो दूसरी भुजा ।

तब भी उसे अपनी ओर आते देख,
उसके पाँव भी काट डाले राम ने,
अनेक बाण चलाकर उसका मुख,
अपने बाणों से भर दिया राम ने ।

फिर देदीप्यमान ऐन्द्रास्त्र चलाकर,
उसका मस्तक काट डाला राम ने,
इस प्रकार उस अजेय कुम्भकर्ण को,
वध कर यमालय भेज दिया राम ने ।

एकोनचत्वारिंश: सर्ग: से पञ्चचत्वारिंश: सर्ग:

मूर्छित हो गया रावण यह सुन,
विलाप करने लगा तरह-तरह से,
चले गए मुझे छोड़ यमलोक तुम,
मेरी दाहिनी भुजा कट गयी है जैसे ।

कोई प्रयोजन नहीं अब मुझे राज्य से,
सीता को लेकर भी मैं क्या करूँगा,
राम को मारे बिना मेरा जीना व्यर्थ है,
मैं भी भाई का अनुसरण करूँगा ।

जीना व्यर्थ है यदि नहीं मारता,
भाई के हत्यारे राम को मैं,
इससे अच्छा तो मर जाना है,
आज ही युद्ध के लिए जाऊँगा मैं ।

पिता को शोकसागर में डूबा देख,
इन्द्रजित बोला अभी जीवित हूँ मैं,
राम-लक्ष्मण को क्षत-विक्षत करूँगा,
आज ही अपने इन हाथों से मैं ।

वायु से तीव्र वेग वाले रथ पर,
सवार हो इन्द्रजित चला रण में,
उसके पीछे-पीछे राक्षस सेना भी,
सिंहनाद करती चली राम से लड़ने ।

बन्दूक, बाण, गदा, मूसल आदि से,
इन्द्रजित लगा वानरों को मारने,
गन्धमादन और दूर खड़े नल को भी,
बाणों से घायल कर दिया उसने ।

जाम्बवान, नील, अंगद आदि,
वीरों को भी घायल किया उसने,
फिर राम और लक्ष्मण को भी,
मृतप्राय सा कर दिया उसने ।

राम और लक्ष्मण के मूर्छित होने से,
किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये सब वानर वीर,
तब विभीषण ने धैर्य बंधाया उनको,
बोले, देखें कौन-कौन जीवित है वीर ?

हनुमान और विभीषण मशाल ले,
रात्रि में घूम-घूमकर लगे ढूँढने,
सुग्रीव, अंगद आदि अनेक वीर,
घायल पड़े हुए वहाँ दिखे उन्हें ।

फिर ढूँढने लगे वे जाम्बवान को,
बुझी अग्नि से पड़े दिखे वे उन्हें,
विभीषण का स्वर पहचान, कठिनाई से,
हनुमान के लिए पूछा उन्होंने ।

आश्चर्य चकित हो विभीषण बोले,
राजकुमारों की कुशल पूछी न आपने,
पहले हनुमानजी के लिए पूछा है,
इसका कारण आया न समझ में ?

जाम्बवान बोले यदि हनुमान जीवित है,
तो सारी सेना मारी जाकर भी जीवित,
यदि हनुमानजी मर गए तो हम सब,
जीवित होकर भी होंगे न जीवित ।

उनके चरण-स्पर्श कर हनुमान ने,
अपना नाम ले प्रणाम किया उन्हें,
अपना पुनर्जन्म समझ जाम्बवान,
हनुमानजी से तब लगे ये कहने ।

हे हनुमान ! समुद्र के ऊपर-ही-ऊपर,
मार्ग तै कर हिमालय पर्वत जाओ तुम,
उसके आगे स्वर्ण-मय और अति ऊँचा,
ऋषभ नामक पर्वत-श्रेष्ठ पाओगे तुम ।

उसके और कैलास शिखर के बीच,
एक औषध पर्वत को देखोगे तुम,
दिशाओं को चमकाती चार बूटियाँ,
उस औषध पर्वत पर पाओगे तुम ।

मृतसन्जीवनी, विशल्यकरणी, सावर्णकरणी,
और सन्धानकरणी[20] हैं बूटियों के नाम,
इन बूटियाँ को उस पर्वत से लाकर,
तुम शीघ्र ही लौट आओ, हे हनुमान !

बड़ी तेजी से चल दिए हनुमान,
शीघ्र पहुँच गए हिमालय पर्वत पर,
जैसा जाम्बवानजी ने बतलाया,
दिख पड़े उन्हें वे पर्वत-शिखर ।

लेकिन भलीभाँति पहचान न पाए तो,
जड़ से उखाड़ लीं सब चमकती बूटियाँ,
फिर उस औषधि-खण्ड को लेकर,
हनुमानजी शीघ्र ही लौट आए वहाँ ।

गन्ध सूँघ उन दिव्य औषधियों की,
वे सभी स्वस्थ होकर उठ बैठे,
राम और लक्ष्मण भी सावधान हो,
अपने धनुष-बाण लेकर आ डटे ।

राम के धनुष की टंकार सुन,
बहुत ही कुपित हो उठा रावण,
इन्द्रजित से कहा फिर से जाओ,
मार डालो उन दोनों को तत्क्षण ।

रणभूमि पहुँच इन्द्रजित ने देखा,
राक्षस सेना को मार रहे वे दोनों,
बाणों की वर्षा करने लगा वो उनपर,
तो दिव्य अस्त्र चलाने लगे वे दोनों ।

उन दिव्यास्त्रों से आकाश ढक गया,
पर छू भी न सके वे अस्त्र उसे,
धूम्रास्त्र चला धूआँ फैला रखा था,
अन्धकार हो गया था जिससे ।

सुनाई भी नहीं दे रहा था,
इन्द्रजित की प्रत्यन्चा का शब्द,
न रथ के पहियों का, न घोड़ों का,
न उसके चलने-फिरने की आहट ।

लक्ष्मण ने तब क्रोधित हो कहा,
ब्रह्मास्त्र छोड़ना चाहता हूँ मैं अब,
समस्त राक्षसों का संहार कर दूँगा,
आज्ञा दीजिए, हे भाई ! मुझे अब ।

श्रीराम ने कहा, एक राक्षस के पीछे,
उचित नहीं वध सभी राक्षसों का,
छिप रहा या भाग रहा हो जो,
उचित नहीं है वध करना उसका ।

कोई अमोघ अस्त्र चला न दें यह सोच,
इन्द्रजित चला गया था वापस लंका,
पर यह सोच कि राक्षस मारे जाएँगे,
वह शूर पुन: युद्ध के लिए निकला ।

राम और लक्ष्मण को उद्यत देख,
एक माया रची इन्द्रजीत ने,
सीता का एक पुतला रथ में बिठा,
उसका वध दिखाना चाहा उन्हें ।

[20] मृतसन्जीवनी-मृत व्यक्ति को जिलाने वाली, विशल्यकरणी-घावों को भरने वाली, सावर्णकरणी-त्वचा को पूर्ववत करने वाली, सन्धानकरणी-हड्डी को जोड़ने वाली बूटियाँ ।

हनुमान द्वारा हिमालय से बूटियाँ लेकर आना

वानरों के सम्मुख पहुँच इन्द्रजित ने,
पुतले के केश पकड़, खेंच ली तलवार,
फिर मारने लगा उस बनावटी सीता को,
यह देख हनुमानजी लगाने लगे फटकार ।

ब्रह्मर्षिकुल में जन्म लेकर भी तू,
कर्म कर रहा राक्षसयोनि में जन्में से,
धिक्कार तुझे है, हे नीच, पापाचारी !
क्या तनिक भी दया नहीं है तुझमें ?

कर बहुत दिन जीवित न रहेगा,
आ गया है अब तू मेरी नजर में,
झपट पड़े हनुमान फिर उस पर,
लेकिन राक्षस सेना आ गयी बीच में ।

फिर बोला आए हो जिसके लिए,
उस सीता का वध करने के बाद,
राम, लक्ष्मण, तुझे, सुग्रीव को मार,
विभीषण को मारूँगा उसके बाद ।

उस सीता को मारकर वह बोला,
लो तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ हो गया,
आए थे जिस सीता को ले जाने,
उस सीता का तो वध हो गया ।

तब वानरों सहित लौट पड़े हनुमान,
इन्द्रजित भी चल पड़ा वहाँ से,
निकुम्भला देवी के मन्दिर में पहुँच,
बैठ गया अग्नि में हवन करने ।

श्रीराम ने सुना जब यह समाचार,
मूर्छित हो गिर पड़े भूमि पर,
वानर वीर उन्हें घेर खड़े हो गये,
धैर्य बंधाने लगे लक्ष्मण आकर ।

तभी वहाँ पर विभीषण आ गये,
सब सुनकर वह उनसे कहने लगे,
यह बात वैसे ही असम्भव है जैसे,
समुद्र सूख गया कोई कहने लगे ।

बोले, जानता हूँ रावण का अभिप्राय,
सीता का वध वो कभी न करेगा,
उन्हें लौटाने की बात न मानी,
फिर उनका वध कैसे करने देगा ?

श्रीराम ने सुना जब यह समाचार,
मूर्छित हो गिर पड़े भूमि पर,
वानर वीर उन्हें घेर खड़े हो गये,
धैर्य बंधाने लगे लक्ष्मण आकर ।

तभी वहाँ पर विभीषण आ गये,
सब सुनकर वह उनसे कहने लगे,
यह बात वैसे ही असम्भव है जैसे,
समुद्र सूख गया कोई कहने लगे ।

बोले, जानता हूँ रावण का अभिप्राय,
सीता का वध वो कभी न करेगा,
उन्हें लौटाने की बात न मानी,
फिर उनका वध कैसे करने देगा ?

इन्द्रजित ने धोखा दिया वानरों को,
बनावटी सीता मारी उनके सामने,
निकुम्भला देवी के मन्दिर में अब,
पहुँच गया है वो हवन करने ।

हवन कर जब वो जाता युद्ध में,
इन्द्र के लिए भी दुर्जेय हो जाता,
वानर निराश हो विघ्न न डालेंगे,
यही सोच उसने ये नाटक किया था ।

उसके हवन समाप्त होने से पहले,
पहुँच जाना चाहिए हमें वहाँ,
आप सावधान हो यहीं विराजें,
हमारे साथ लक्ष्मण को भेजें वहाँ ।

पैने-पैने बाण चलाकर लक्ष्मण,
विघ्न डालेंगे उसके हवन में,
अधूरा हवन छोड़ जब वो उठेगा,
वध हो सकेगा उसका रण में ।

धैर्य धर लक्ष्मण से बोले राम,
जाकर मार डालो इन्द्रजित को,
हनुमान आदि को ले जाओ साथ,
विभीषण जानते हैं उस जगह को ।

हर्षित हो चल पड़े लक्ष्मण,
बोले, इन्द्रजित आज बच न सकेगा,
वहाँ पहुँच कर देखा उन्होंने,
व्यूह बनाए खड़ी थी राक्षस सेना ।

वानर सेना भिड़ गयी राक्षस सेना से,
लक्ष्मण बाण चलाने लगे इन्द्रजित पर,
यह सब देख उठ खड़ा हुआ इन्द्रजित,
हो गया सवार पहले से जुते रथ पर ।

सारथि को कहा मेरा रथ ले चलो,
जहाँ हनुमान मार रहे राक्षसों को,
उधर विभीषण ने लक्ष्मण से कहा,
मार डालो अब तुम इन्द्रजित को ।

षट्चत्वारिंश: सर्ग: से एकोपन्चास: सर्ग:

लक्ष्मण को ले वे चले वहाँ,
जहाँ इन्द्रजित लड़ रहा कपि से,
उसे देख ललकारा लक्ष्मण ने,
आकर युद्ध कर तू मुझसे ।

विभीषण को लक्ष्मण के साथ देख,
इन्द्रजित बोला इसी कुल में जन्में तुम,
मेरे पिता के साक्षात् भाई हो,
फिर मुझसे द्रोह क्यों कर रहे तुम ?

न तो तू बिरादरी का इनकी,
न मित्र, न इनकी जाति वाला,
फिर क्यों इनका साथ दे रहा,
अपने सगे भाई से वैर पाला ।

अपने स्वजनों का परित्याग कर,
दास बना उनके शत्रु का,
शोचनीय है तुहारा पतन,
सज्जन लोग करेंगे इसकी निन्दा ।

कहाँ तो रहना अपनों के साथ,
कहाँ परायों के आश्रय में रहना,
पर पत्थर पड़े हैं बुद्धि पर तेरी,
कठिन है तेरे लिए ये समझना ।

भले ही परजन में गुण-ही-गुण हों,
और दोष-ही-दोष हों स्वजन में,
फिर भी गुणवान परजन की अपेक्षा,
श्रेष्ठ है रहना अपने स्वजन में ।

आत्मीयजनों का पक्ष त्याग,
शत्रुपक्ष का जो आश्रय लेता,
आत्मीयजनों के नष्ट हो जाने पर,
पर-पक्ष द्वारा ही नष्ट हो लेता ।

इन्द्रजित के कटु वचन सुन विभीषण,
बोले क्यों व्यर्थ की बातें करता,
मेरा स्वभाव जब नहीं जानता,
क्यों मुझ पर ये आक्षेप तू करता ?

राक्षसकुल में जरुर जन्मा हूँ मैं,
लेकिन धार्मिक वृत्ति है मुझमें,
न मुझे निष्ठुर कर्म पसंद हैं,
न ही मेरी रूचि है अधर्म में ।

धर्मरूपी शील से पतित है जो,
वह निश्चय ही है पापी,
विषधर सर्प को छोड़ देना सा,
सुख मिलता, उसे त्याग भी ।

औरों का धन लूटने वाला, हिंसक,
या परस्त्री का हरण करने वाला,
त्याग देना चाहिए ऐसे दुराचारी को,
जैसे किसी घर में लगी हो ज्वाला ।

मित्रों पर सन्देह, महर्षियों का वध,
झगडा, क्रोध, वैर और रोड़े अटकाना,
ये समस्त दोष भाई रावण में हैं,
सम्भव नहीं उसका ऐश्वर्य बच पाना ।

जैसे पर्वत को ढक लेते मेघ,
इन दोषों ने ढक लिए गुण उसके,
इसीलिए तुम्हारा पिता, मेरा भाई,
आया हूँ मैं उस रावण को छोड के ।

बहुत क्रुद्ध हुआ इन्द्रजित यह सुन,
बोला, तुम सबको मार दूँगा आज,
भूल गए क्या तुम मेरा वो पराक्रम,
कि फिर मरने चले आए हो आज ?

लक्ष्मण बोले, तू बस डींगें हाँकता,
चोरों सा छिप कर वार किया तूने,
आ, युद्ध कर मेरे सामने आकर तू,
देखें कितना बल है तेरी भुजाओं में ?

बाणों की वर्षा करने लगा इन्द्रजित,
बहने लगा रक्त लक्ष्मण के तन से,
खड़े रहे वहीं वो निश्चल होकर,
सुशोभित हो रहे धूम्र-रहित अग्नि से ।

व्यंग बाण चलाने लगा इन्द्रजित,
पर लक्ष्मणजी ने उत्तर दिया बाणों से,
दोनों ओर से हुआ प्रहार-पर-प्रहार,
कोई कम पड़ रहा न किसी से ।

लड़ते रहे बहुत देर तक दोनों,
आकाश ढक गया उनके बाणों से,
घोड़ों और सारथि को मार डाला,
तब लक्ष्मणजी ने अपने बाणों से ।

फुर्ती से रथ बदल लिया इन्द्रजित ने,
लंका जाकर वो वापस लौट आया,
धोखे में पड़े वानर देख ने सके,
कब लंका गया वो कब वापस आया ।

मारने लगा वानर वीरों को इन्द्रजित,
लक्ष्मणजी भी भर उठे क्रोध से,
काट डाला उसके हाथ का धनुष,
घायल कर दिया बाण मारकर उसे ।

मार दिया इस रथ के सारथि को भी,
पर शिक्षित और सधे घोड़े भड़के नहीं,
काटने लगे चक्कर वे मण्डलाकार में,
रथ को लेकर घोड़े कहीं भागे नहीं ।

तब बाण चलाकर लक्ष्मणजी ने,
घायल कर दिया उन घोड़ों को,
इन्द्रजित ने मारे दस बाण उन्हें,
लक्ष्मणजी ने भी घायल किया उसको ।

तब विभीषणजी के मुख पर बाण मार,
इन्द्रजित ने घायल कर दिया उनको,
महातेजस्वी विभीषण ने क्रोधित हो,
मार डाला उसके रथ के घोड़ों को ।

सारथि और घोड़ों के मर जाने से,
नीचे कूद शक्ति चलाई उन पर,
लक्ष्मणजी ने दस टुकड़े कर दिए,
बीच में ही उसके बाण मार कर ।

आग्नेयास्त्र प्रयोग किया इन्द्रजित ने,
सौर्यास्त्र से लक्ष्मणजी ने नष्ट कर दिया,
इस प्रकार एक-दूसरे पर प्रहार करते,
उन दोनों ने अद्भुत युद्ध किया ।

अन्त में ऐन्द्रास्त्र बाण निकाल,
इन्द्रजित के वध का निश्चय कर,
छोड़ दिया उस बाण को उस पर,
श्रीराम की सत्यता का वास्ता देकर ।

सिरस्त्रान और कुण्डलों के सहित,
उसका सिर धड़ से अलग हो गया,
भाग खड़ी हुई सेना राक्षसों की,
लक्ष्मणजी का जय-जयकार हो गया ।

श्रीराम के पास जा समाचार सुनाया,
अत्यन्त प्रसन्न हुए वो यह सुनकर,
बोले, रावण को भी मरा ही समझो,
तुमने यह कार्य किया बड़ा ही दुष्कर ।

फिर घायल लक्ष्मणजी को सान्त्वना देते,
वैद्यराज सुषेण[21] को बुलवा भेजा उन्होंने,
नस्य दे, बाणों की नोकें निकालकर,
स्वस्थ कर दिया लक्ष्मणजी को उन्होंने ।

पन्चास: सर्ग: से चतुष्पन्चास: सर्ग:

इन्द्रजित के वध की खबर सुन,
महामूर्छा में पड़ गया दुखी रावण,
बहुत देर बाद जब मूर्छा भंग हुई,
व्याकुल हो विलाप करने लगा रावण ।

विलाप करते-करते क्रोधित हो उठा,
सोचा सीता को ही क्यों न मार दे,
पर मन्त्री महापार्श्व ने उसे समझाया,
अपना क्रोध रावण राम पर उतारे ।

अगले दिन अमावस्या को रावण,
बचे राक्षस वीरों को साथ ले निकला,
आठ घोड़े जुते हुए रथ पर सवार हो,
भूमि को विदीर्ण सा करता चला ।

लड़ने लगी वानर और राक्षस सेना,
भीषण संहार किया रावण ने,
वानर वीरों का वध करते-करते,
जा पहुँचा रावण जहाँ राम थे ।

उधर जब सुग्रीव ने देखा,
वानर भाग रहे युद्धभूमि से,
अपने हाथ में एक वृक्ष को ले,
चल पड़े वो रावण से लड़ने ।

[21] सुषेण सुग्रीव के वानर यूथपति थे । पूर्व में इनके नाम का उल्लेख आया है । यूथपति होने के साथ ही वे एक कुशल वैद्य भी थे ।

मारते जा रहे थे वे राक्षस वीरों को,
कि विरूपाक्ष आगया हाथी पर सवार हो,
करने लगा बाणों की वर्षा उन पर,
सुग्रीव ने वो वृक्ष दे मारा हाथी को ।

फिर एक शिला को उठा उन्होंने,
प्रहार किया उससे विरूपाक्ष पर,
लेकिन बचा लिया स्वयं को उसने,
और तलवार से वार किया सुग्रीव पर ।

एक मुहूर्त तक मूर्छित रहे सुग्रीव,
फिर उठ एक घूँसा मारा विरूपाक्ष को,
कवच काट दिया विरूपाक्ष ने उनका,
तो एक चपेटा मारा सुग्रीव ने उसको ।

उस वज्र समान चपेटे के प्रहार से,
रक्त उलटता विरूपाक्ष मर गया,
उसके मारे जाने का समाचार जान,
रावण अत्यन्त क्रोध से भर गया ।

समीप खड़े महोदर से कहा उसने,
अब मेरी आशा टिकी है तुम्हीं पर,
चल पड़ा वो वानर वीरों को मारता,
तो सुग्रीव ने धावा कर दिया उस पर ।

सुग्रीव ने उठा ली एक परिघ,
महोदर लड़ने लगा गदा हाथ में ले,
जब टूट गए आयुध दोनों के,
मुक्कों से एक-दूसरे पर पिल पड़े ।

बहुत देर लड़ते रहे वो गुथ्मगुथा हो,
थकने पर पास पड़ी तलवारे उठा ली,
महोदर ने सुग्रीव का कवच काट डाला,
तो सुग्रीव ने उसकी गर्दन ही उतार ली ।

महोदर को मरा देख महापार्श्व ने,
हमला बोल दिय अंगद की सेना पर,
बाणों से मार डाले अनेक वानर उसने,
अंगद एक परिघ उठा झपटे उस पर ।

परिघ फेंक गिरा दिया उसका धनुष,
सिर की टोपी को भी उड़ा दिया,
फिर उसके समीप पहुँच उन्होंने,
उसकी कनपटी पर प्रहार किया ।

तब फरसा उठा वार किया उसने,
अंगद ने बचा लिया स्वयं को,
फिर पिता से बलशाली अंगद ने,
छाती पर एक घूँसा मारा उसको ।

फट गया हृदय महापार्श्व का,
निष्प्राण हो गिर पड़ा भूमि पर,
भाग खड़ी हुई राक्षसों की सेना,
नाद करने लगे हर्षित हो वानर ।

पञ्चपन्चास: सर्ग: से सप्तपन्चास: सर्ग:

तीनों महाबली राक्षसवीरों को मरा देख,
बहुत ही उद्विग्न हो कहने लगा रावण,
राम-लक्ष्मण को आज मार ही डालूँगा,
राम के सामने ले चलो मुझे तत्क्षण ।

क्रोध के मारे मरा जा रहा रावण,
बाणों की वर्षा करने लगा राम पर,
काट गिराया बीच में ही उन्हें राम ने,
और बाणों की झड़ी लगा दी उस पर ।

लक्ष्मण ने रथ की ध्वजा काट डाली,
और सारथि का भी सिर काट डाला,
फिर हाथी की सूँड सा आकार वाला,
राक्षसराज का धनुष भी काट डाला ।

मार डाले उसके रथ में जुते घोड़े,
विभीषण ने अपनी गदा चलाकर,
अत्यन्त क्रोधित रावण ने उन्हें,
मार डालना चाहा बर्छी फेंककर ।

लेकिन काट दिया उस बर्छी को,
बीच में ही लक्ष्मण ने बाणों से,
तब रावण बोला उसे छोड़ मैं,
अब तुझे ही मारूँगा बर्छी से ।

मेरे हाथ से छूटी रक्तसनी बर्छी,
प्राण ले लेगी तेरा हृदय चीरकर,
फिर दे मारी वह बर्छी रावण ने,
गिर पड़े चोटिल लक्ष्मण भूमि पर ।

लक्ष्मण की ऐसी दशा देखकर,
भातृ-स्नेहवश उदास हो गए राम,
फिर सोच यह विषाद का समय नहीं,
रावण का वध करने चल पड़े राम ।

सुग्रीव और हनुमान को सम्बोधित कर,
बोले, तुम लक्ष्मण को घेर खड़े रहो,
रावण या राम से रहित यह संसार,
आज अवश्य हो जाएगा, देखते रहो ।

राज्य का नाश, वन का वास,
दण्डक वन में मारे-मारे फिरना,
सीता का हरण, राक्षसों का समागम,
इन सबने मुझे क्लेश दिया कितना ।

आज युद्ध में रावण को मारकर,
सब क्लेशों से मुक्त हो जाउँगा,
बखान करेंगे देवता सहित चराचर,
आज मैं वह अद्भुत काम करूँगा ।

ऐसा कह सावधान हो श्रीराम ने,
स्वर्ण जड़े सात बाण रावण को मारे,
रावण ने भी धाराप्रवाह वर्षा सम,
नाराच और मूसल राम को मारे ।

श्रीराम के बाणों से पीड़ित हो,
भाग गया रावण रणभूमि से,
लेकिन राम प्रसन्न न हुए,
दुखी थे भाई को मरा देख के ।

विलाप करते हुए देख राम को,
सुषेण ने आकर कहा ये उनसे,
मरे नहीं, बस मूर्छित हैं लक्ष्मण,
शेष हैं इनमें लक्षण जीवन के ।

बिगड़ी नहीं है आकृति शरीर की,
न मुखमण्डल का रंग पड़ा है काला,
न ही अभी ये निस्तेज हुए हैं,
चेहरा प्रसन्न है और आभा वाला ।

फिर समीप खड़े हनुमान से बोले,
हे सौम्य ! औषध पर्वत पर जाओ,
उसके दक्षिण शिखर पर की बूटियाँ,
लक्ष्मण के जीवनार्थ तुरन्त ले आओ ।

चले गए हनुमानजी औषध पर्वत पर,
पर बूटियों को वे पहचान न सके,
सहसा उनके मन में विचार आया,
पर्वत शिखर को ही उखाड़ ले चलें ।

विविध प्रकार के पुष्पित वृक्ष उखाड़,
हनुमानजी उड़कर लंका जा पहुँचे,
सुषेण ने ज्योहिं सुँघाई जड़ी-बूटियाँ,
लक्ष्मणजी स्वस्थ हो उठ खड़े हुए ।

श्रीराम उन्हें गले लगा कहने लगे,
हे लक्ष्मण ! यदि तुम्हे कुछ हो जाता,
सीता को पाना या रावण को जीतना,
मेरे लिए तो जीना भी व्यर्थ हो जाता ।

खिन्न मन लक्ष्मण धीरे से बोले,
श्रेष्ठ पुरुष फिरते न प्रतिज्ञा से अपनी,
मेरे लिए उचित नहीं निराश होना,
प्रतिज्ञा पूरी कीजिए आप अपनी ।

लक्ष्मणजी के यह वचन सुनकर,
श्रीराम ने धनुष ले बाण चढ़ाया,
उधर रावण भी दूसरे रथ पर चढ़,
श्रीराम से फिर लड़ने चला आया ।

देख रहे थे देव, गंधर्व और दानव,
उन दोनों को वहाँ पर लड़ते हुए,
रावण तो था रथ पर आरूढ़,
लेकिन श्रीराम भूमि पर खड़े हुए ।

इस युद्ध को बराबरी का न देख,
इन्द्र ने भेज दिया रथ अपना,
सारथि मातलि ने जा श्रीराम से कहा,
इन्द्र ने भेजा आपके लिए रथ अपना ।

परिक्रमा कर उस रथ की श्रीराम,
आरूढ़ हो गए इन्द्र के भेजे रथ पर,
भयंकर युद्ध होने लगा दोनों में,
बाण बरसाने लगे एक-दूसरे पर ।

बाणों की उस अविरल वर्षा ने,
अन्धकार कर दिया समरभूमि में,
देख भी नहीं पा रहे एक-दूसरे को,
तब राम रावण को लगे धिक्कारने ।

बोले, अरे राक्षसाधम ! हमारे अनजाने में,
उठा लाया तू मेरी विवशा पत्नी को,
कायरों की तरह आचरण करने वाले,
इसी भरोसे शूरवीर समझता खुद को ।

कुबेर का छोटा भाई होकर तूने,
सराहनीय और बड़ा भारी काम किया,
खूब फहराएगी तेरी विजय पताका,
दुनिया में अपना नाम ऊँचा किया ?

आज सामने आ खड़ा हुआ है तू,
भेज देता हूँ तुझे यमलोक को,
ले अब मेरे बाणों का उत्तर दे,
यह कह छोड़ने लगे राम बाणों को ।

वानरों द्वारा की जा रही पत्थर वर्षा,
और राम के बाणों से घबराया देखकर,
सारथि सावधानी से धीरे-धीरे हाँक,
ले गया उसका रथ रणभूमि से बाहर ।

अष्टपन्चास: सर्ग: से एकष्टितम: सर्ग:

दूर हुई जब घबराहट रावण की,
सारथि पर क्रुद्ध हो बोला उससे,
क्या तूने मुझे कायर, निर्बल समझा,
बिना पूछे मुझे ले आया रण से ।

मेरा तेज, पराक्रम और उपार्जित यश,
सब मिट्टी में मिला डाला है तूने,
क्यों नहीं ले जा रहा मेरा रथ रण में,
क्या शत्रु से पुरस्कार पाया है तूने ?

यदि तू मेरा सच्चा हितैषी है तो,
शत्रु को मेरे पीछे यहाँ आने से पहले,
मेरे रथ को वहीं तू लौटा ले चल,
मुझे और क्रोधित हो जाने से पहले ।

तब सारथि अत्यन्त विनीत हो बोला,
न मैं भयभीत, न बुद्धि भ्रमित मेरी,
न शत्रु से पुरस्कार पाया है मैंने,
न ही इसमें और कोई मंशा है मेरी ।

आपके हित और यश की रक्षा करने,
मन से उत्तम कार्य किया है मैंने,
सावधानी से आपके रथ को निकाल,
सारथि धर्म का निर्वाह किया है मैंने ।

थक गए थे आप युद्ध करते-करते,
क्लान्त हो गया था मुख आपका,
घोड़े भी थककर सुस्त पड़ गए थे,
सो वहाँ से चले आना ठीक समझा ।

सन्तुष्ट हो तब रावण बोला,
ले चलो रथ को राम के पास,
शत्रु को मारकर ही लौटूँगा मैं,
रण का निर्णय हो जाएगा आज ।

शत्रु के उस मेघ समान रथ को,
अपनी ओर आते देख राम ने,
धनुष टंकार अपने सारथि से कहा,
ले चलो मेरा रथ शत्रु के सामने ।

जब उनके रथ आमने-सामने आ गए,
क्रूर महायुद्ध आरम्भ हो गया उनमें,
दोनों महती सेना निश्चेष्ट खड़ी थीं,
पहले रथ पर बाण छोड़े रावण ने ।

इन्द्र के उस अद्भुत रथ पर,
कुछ प्रभाव न पड़ा बाणों का,
तब राम ने एक पैना बाण छोड़,
रावण के रथ की काट दी ध्वजा ।

रावण की शर-वृष्टि ने तब,
घोड़ों को घायल कर दिया उनके,
राम ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों से,
घोड़ों को घायल कर दिया रावण के ।

दोनों योद्धा दे रहे थे टक्कर,
दोनों दे रहे एक-सा उत्तर आपस में,
राम-रावण का यह युद्ध अलग है,
कह रहे दर्शक, ऐसा देखा न हमने ।

तत्पश्चात क्रोध में भर राम ने,
एक सर्पाकार बाण रावण पर चलाया,
रावण का सिर कट भूमि पर गिर पड़ा,
पर उसकी जगह दूसरा निकल आया ।

एक ही आकार-प्रकार के सिर,
कट-कट कर निकलते रहे रावण के,
राम ने सौ बार काटे उसके सिर[22],
पर निकले नहीं प्राण रावण के ।

मातलि ने तब याद दिलाया,
कि प्रयोग करें ब्रह्मास्त्र का राम,
ब्रह्मास्त्र निकालकर श्रीराम ने,
किया धनुष पर उसका सन्धान ।

---

[22] हनुमानजी ने सोते हुए रावण का एक सिर और दो ही हाथ देखे थे । ये सौ सिर रावण की कोई मायावी चाल रही होगी । राक्षस बनावटी पुतले बनाने में सिद्ध-हस्त थे, जिनका संदर्भ कई स्थानों पर आया है ।

अत्यन्त क्रुद्ध हो राम ने उसे,
छोड़ दिया राक्षसराज रावण पर,
हृदय विदीर्ण कर दिया ब्रह्मास्त्र ने,
मृत हो रावण गिरा भूमि पर ।

निश्चेष्ट पड़े रावण को देख,
दुखी विभीषण करने लगे विलाप,
उत्तम सेजों पर सोने वाले,
भूमि पर क्यों पड़े हैं आप ?

चेष्टाहीन हो फैलीं हैं भुजाएँ आपकी,
मुकुट भी आपका पड़ा हुआ है अलग,
सुनितिज्ञों की मर्यादा नष्ट हो गई,
उठ गया धरती से एक बलवान विकट ।

राम ने उन्हें सान्त्वना देते कहा,
सामर्थ्यहीन हो नहीं मारा गया रावण,
इसका युद्धोत्साह तो बढ़ा-चढ़ा था,
दैववश ही मारा गया है रावण ।

क्षात्रधर्म में स्थित, विजय के लिए,
समर भूमि में जो त्यागते प्राण,
उचित नहीं उनके लिए शोक करना,
उन्हें तो मिलता वीरोचित सम्मान ।

जो जन्मा है, वो अवश्य मरेगा,
यह सोच परित्याग करो शोक का,
सोचो अब आगे क्या करना है,
निश्चय करो अपने कर्त्तव्य का ।

वैर-भाव जीवित रहने तक रहता,
मरने पर वैर-भाव समाप्त हो जाता,
जैसे तुम्हारा, वैसे ही ये मेरा भाई है,
संस्कार करो सम्मानपूर्वक इसका ।

रावण की मृत्यु का समाचार सुन,
स्त्रियाँ आकर करने लगीं विलाप,
कैसे मारे गए मन्दोदरी बोलीं,
देव-दानवों से भी अजेय थे आप ।

एक साधारण मनुष्य राम से,
पराजित हो आप क्यों न लजाते,
इन्द्रियाँ जीत, तीनों लोक जीते थे,
उन्हीं ने अपना वैर निकाला आपसे ।

कहा था मत करो वैर राम से,
पर मानी नहीं मेरी बात आपने,
पातिव्रत्यरूपी अग्नि है सीता,
भस्म हो गए आप उस अग्नि में ।

कोई नहीं मरता है बिना कारण,
आपकी मृत्यु का कारण बनी सीता,
वो तो श्रीराम संग विहार करेगी,
पर मैं अभागी हो गयी विधवा ।

तदन्तर विभीषण से बोले राम,
स्त्रियों को समझा-बुझा भेजो लंका,
अब शोक करने का समय नहीं,
अंत्येष्टि संस्कार करो भाई का ।

श्रीराम का हृदयगत विचार जानने,
विभीषण बोले, मुझे उचित नहीं लगता,
बड़े भाई के नाते मेरे लिए पूज्यनीय है,
पर भाई होते हुए भी मेरा शत्रु था ।

पर-स्त्रीगामी और अधर्मी था रावण,
क्रूर, अत्याचारी और मिथ्यावादी था,
बुराई करता रहता था सभी की,
उचित नहीं मैं करूँ संस्कार इसका ।

निष्ठुर और हृदयहीन कहेंगे लोग,
लेकिन रावण के दुर्गुणों को सुन,
वे ही लोग तब मेरी प्रशंसा करेंगे,
मानेंगे नहीं इसको मेरा अवगुण ।

परम प्रसन्न हो बोले श्रीराम उनसे,
विजयी हुआ मैं सहायता से आपकी,
करना है मुझे आपका प्रिय कार्य,
अवश्य कहुँगा बात आपके हित की ।

यद्दपि पापी और मिथ्यावादी था रावण,
तथापि बलवान, तेजस्वी और शूरवीर था,
आपको इसका संस्कार करना ही चाहिए,
मृत्यु के साथ ही वैर समाप्त हो जाता ।

द्विषष्टितम: सर्ग: से षटषष्टितम: सर्ग:

अंत्येष्टि संस्कार के बाद राम ने,
कहा समीप बैठे हुए लक्ष्मण को,
हे सौम्य ! लंका में जाकर तुम,
विभीषण का राज्याभिषेक करो ।

समुद्र का जल मँगवा लक्ष्मणजी ने,
लंका जा अभिषेक किया उनका,
उधर श्रीराम ने कहा हनुमान से,
लंका जा संदेश ले आओ सीता का ।

महाराज विभिषण से आज्ञा लेकर,
लंकापुरी जा देना मेरा संदेश सीता को,
विजय का संवाद सुना आनन्दित कर,
कहना मार डाला मैंने रावण को ।

अशोकवाटिका में देखा उन्होंने,
मैली-कुचली, उदास बैठी थीं वो,
हाथ जोड़ प्रणाम कर हनुमान,
राम का संदेश कहने लगे उनको ।

बोले, श्रीराम ने कहला भिजवाया है,
विजय सार्थक हुई आपके जीवित होने से,
रावण मारा गया, विभीषण राजा बने,
आप घर में ही रह रहीं हैं, समझ लें ।

हर्षित हो गदगद वाणी में बोलीं सीता,
हे हनुमान ! क्या पुरस्कार दूँ मैं तुम्हें,
इस सुखद समाचार का पारितोषिक,
सारे संसार में नहीं दिखता मुझे ।

हनुमान बोले, यदि आप आज्ञा दें,
पटक-पटक कर मार दूँ राक्षसियों को,
सीताजी बोलीं, पराधीन दासियों पर,
उचित नहीं करना क्रोध किसी को ।

मैंने दुःख पाया भाग्य दोष से,
अपना किया ही भोग जाता,
बुराई के बदले भी दया ही उचित,
अपराध किस से नहीं हो जाता ?

फिर सीताजी बोलीं मैं आज ही,
करना चाहती हूँ अपने पति के दर्शन,
सीताजी का यह सन्देशा लेकर,
राम के पास लौट आए वे तत्क्षण ।

सीताजी का संदेश पाकर श्रीराम ने,
पास ही उपस्थित विभीषणजी से कहा,
हे विभीषण ! सत्कार कर सीता का,
तुरन्त ही मेरे पास ले आओ यहाँ ।

स्नान करवा, अलंकृत कर सीताजी को,
पालकी में सवार कर ले जाया गया,
सीताजी को देख श्रीराम का मन,
क्रोध, हर्ष और ग्लानि[23] से भर गया ।

सीताजी को पास ले आओ कहने पर,
विभीषणजी हटवाने लगे वहाँ से सबको,
बलपूर्वक हटाए जाने से वानर आदि,
देख नहीं पा रहे थे सीताजी को ।

दया उमड़ पड़ी श्रीराम के मन में,
बोले, ये सब तो हैं मेरे प्रिय सुहद्गण,
बिना इन्हें हटाए ही सीता को ले आओ,
करने दो इनको भी उनके दर्शन ।

सीताजी को समीप देख कहा राम ने,
अन्त हो गया अब मेरे क्रोध का,
अपने अपमान का बदला ले लिया,
और अन्त कर दिया अपने शत्रु का ।

पराक्रम दिखा, प्रतिज्ञा पूरी कर ली,
अपना अपमान दूर कर दिया मैंने,
मनुष्य को जो करना उचित है,
रावण को मार, सब कर दिखाया मैंने ।

उसे मार रक्षा की चरित्र की,
और बचाया स्वयं को निंदा से,
अपने विख्यात वंश का अपयश,
धो डाला है अब मैंने उसे ।

सन्देह उत्पन्न हो गया है, हे सीते !
मेरे मन में तुम्हारे चरित्र पर,
असह्य लग रही हो दीपक के जैसे,
नेत्रों के रोग से पीड़ित होने पर ।

ये दसो दिशाएँ खुली पड़ी हैं,
जिधर चाहो, तुम चली जाओ,
मुझे तुमसे कोई प्रयोजन नहीं,
स्वतंत्र हो, करो जैसा करना चाहो ।

कौन ऐसा तेजस्वी पुरुष होगा,
उच्चकुल में उत्पन्न होकर जो,
सुह्रद समझकर स्वीकार कर लेगा,
शत्रु के घर रही हुई स्त्री को ?

अत्यन्त व्यथित हुई सीताजी यह सुन,
श्रीराम से बोलीं अश्रुपूरित नेत्रों से,
क्यों कर रहे ऐसी रुखी, अनुचित बातें,
जैसे अशिष्ट पुरुष करते पत्नी से ?

हे महाबाहो ! विश्वास करो तुम मेरा,
मैं वैसी नहीं जैसा समझा आपने,
उचित नहीं सन्देह सब स्त्रियों पर,
मैं विवश थी जब मुझे छूआ रावण ने ।

मेरे अधीन तो मेरा अपना मन है,
लगा रहता है वह आप में ही,
मेरा शरीर तो तब पराधीन था,
ऐसे में मैं क्या कर सकती थी ?

[23] क्रोध रावण द्वारा नीचा दिखाए जाने के कारण; हर्ष उस पर विजय के कारण और ग्लानि सीताजी की वन में रक्षा न कर पाने के कारण ।

जान पाए न मुझे साथ रहकर भी,
तो मैं तो मार डाली गयी सदा के लिए,
क्रोध के वशीभूत, औछे मनुष्यों के जैसे,
साधारण स्त्रियों सा समझ बैठे मुझे ?

विवाह में मेरा हाथ पकड़ा था,
माना नहीं उसे भी प्रमाण आपने,
मेरी भक्ति और शील को भी,
अनदेखा कैसे कर दिया आपने ?

फिर समीप खड़े लक्ष्मण से बोलीं,
और कोई औषध नहीं है इस रोग की,
चिता तैयार करो मेरे लिए, हे लक्ष्मण !
मुझ परितक्यता के लिए उचित है यही ।

श्रीराम की ओर देखा लक्ष्मणजी ने,
पर उनका अभिप्राय भी दिखा यही,
तब लक्ष्मणजी ने उनकी सहमती मान,
तुरन्त एक चिता बना तैयार कर दी ।

नीचे मुख किए, प्रदिक्षणा कर राम की,
धधकती आग के निकट आ गईं सीता,
विद्वानों और ब्राह्मणों को प्रणाम कर,
चिता में प्रवेश को तैयार, बोलीं सीता ।

यदि श्रीराम से कभी मेरा मन न हटा,
सर्वसाक्षी हे अग्निदेव ! मेरी रक्षा करें,
मन, वचन, कर्म से विचलित न हुई,
तो हे अग्निदेव ! आप मेरी रक्षा करें ।

ऐसा कह, चिता की प्रदिक्षणा कर,
उसमें कूदने को उद्यत हुई सीता,
तभी रोक लिया उन्हें श्रीराम ने,
बोले शुद्ध और पवित्र हैं सीता ।

फिर कहने लगे वानर आदि से,
यद्दपि सर्वथा निष्कलंक हैं सीता,
लेकिन बहुत दिन लंका में रहीं,
इसलिए कराना चाहता था परीक्षा ।

यदि मैं इनकी परीक्षा न कराता तो,
सब मुझे कामी और मूर्ख कहते,
जानता हूँ सीता का अनन्य अनुराग,
मुझे छोड़ कोई नहीं उसके मन में ।

सीता मुझमें ही अनन्य अनुरागवती है,
मुझसे अभिन्न, जैसे प्रभा सूर्य से,
मैं भी इन्हें वैसे ही त्याग नहीं सकता,
यशस्वी पुरुष अपनी कीर्ति को जैसे ।

सप्तषष्टितम: सर्ग: से एकोनसप्ततितम: सर्ग:

उस घटनापूर्ण दिन के अगले दिन,
श्रीराम के स्नान आदि के लिए,
उबटन, वस्त्र, आभूषण आदि,
विभीषणजी आए अपने साथ लिए ।

बोले, इन वस्तुओं को ग्रहण कर,
मेरे ऊपर अपनी कृपा करें आप,
श्रीराम बोले इनके योग्य सुकुमार भरत,
मेरे कारण कठिन समय रहा है काट ।

अब तो आप सोच-विचार कर,
ऐसा कोई उपाय बताएँ मुझे,
जिससे पहुँच जाऊँ तुरन्त अयोध्या,
मार्ग में समय लगे न मुझे ।

विभीषण बोले एक ही दिन में,
पहुँच जाएँगे आप सब अयोध्या,
यह सूर्य सा देदीप्यमान विमान,
ले चलेगा हम सबको अयोध्या ।

फिर बोले, यदि आपका कृपापात्र हूँ,
तो मेरे अतिथि बन रहें एक दिन,
जी भर सत्कार करना चाहता आपका,
मुझे आपकी सेवा करने दें एक दिन ।

स्नेह, आदर और मित्रता के नाते,
यह विनती करी है मैंने आपसे,
मैं तो बस आपका सेवक हूँ,
आप इसको अन्यथा न समझे ।

श्रीराम ने सबको सुनाते हुए कहा,
आपकी सहायता ही है सत्कार मेरा,
और आपके पौरुष और व्यवहार ने,
समुचित सत्कार किया है मेरा ।

स्वीकर न कर सकूँगा प्रार्थना आपकी,
व्याकुल हूँ मिलने को भाई भरत से,
मेरी वनवास की अवधि पूर्ण हो रही,
भरत जोह रहा है मेरी बाट कब से ।

और क्या करूँ, विभीषण के पूछने पर,
बोले, वानरों ने दिखाई है बड़ी वीरता,
आप इन्हें रत्नादि दे सम्मानित करें,
इन्हीं की सहायता से विजित हुई लंका ।

प्रसन्न होंगे ये पुरस्कार पाकर,
और आपकी भी मिलेगी ख्याति,
सेना को जो उत्साहित न करता,
उदासीन हो सेना विमुख हो जाती ।

विभीषणजी ने सम्मानित किया उन्हें,
पद-मर्यादा अनुसार दिए रत्न आदि,
फिर पुष्पक विमान में बैठ राम ने,
सुग्रीव आदि उन सबको विदा दी ।

बोले, मित्र धर्म का पालन किया आपने,
हे सुग्रीव ! आप लौट जाएँ किष्किन्धा,
विभीषण से कहा निर्विघ्न राज्य कीजिए,
बाल बाँका कोई आपका कर नहीं सकता ।

मैं भी अब जाऊँगा अयोध्या,
चाहता हूँ आपसे अनुज्ञा और विदाई,
हाथ जोडकर तब वे सब बोले,
हमारी भी एक विनती सुनिए रघुराई ।

हम सब भी अयोध्या चलना चाहते,
देखना चाहते आपका राज्याभिषेक,
माता कौसल्या को प्रणाम कर,
फिर लौट जाएँगे हम अपने प्रदेश ।

अति प्रसन्न होकर बोले श्रीराम,
अत्यन्त प्रिय बात कही है आपने,
आप जैसे मित्रों को साथ ले जाना,
इससे बढ़ आनन्द नहीं मेरी दृष्टि में ।

अनुमति पाकर श्रीराम की तब,
वानरों सहित सुग्रीव चढ़े विमान में,
विभीषण भी अपने मन्त्रियों सहित,
आ सवार हुए पुष्पक विमान में ।

आज्ञा पा हंसों से युक्त वह विमान,
शब्द करता उड़ चला आकाश में,
श्रीराम सीताजी को बतलाते जा रहे,
लंका और अन्य स्थानों के बारे में ।

समुद्र पर बना पुल दिखा कर बोले,
नल ने किया था यह दुष्कर कार्य,
किष्किन्धा के बारे में भी बताया,
कैसे बाली वध का वहाँ सधा कार्य ।

किष्किन्धा को देख सीताजी ने कहा,
तारा आदि को देखना चाहती हूँ मैं,
चाहती हूँ वे भी हमारे साथ चलें,
अयोध्या प्रवेश करूँ उनके साथ मैं ।

किष्किन्धा में रुका पुष्पक विमान,
तारा आदि सब स्त्रियाँ आ बैठीं,
उड़कर विमान जब ऋष्यमूक पहुँचा,
बताया सुग्रीव से यहाँ हुई थी मैत्री ।

पम्पा सरोवर दिखा कर बोले,
यहाँ भेंट हुई थी शबरी से मेरी,
इसी वन में कबन्ध को मारा,
और यहाँ भेंट हुई जटायु से मेरी ।

खर, दूषण, त्रिशिरा का भी बताया,
और फिर दिखाया पञ्चवटी का स्थान,
अगस्त्य, शरभंग आदि ऋषियों के आश्रम,
और चित्रकूट, भरत के मिलने का स्थान ।

वनों के मध्य से बहती यमुना,
वहीं निकट आश्रम ऋषि भरद्वाज का,
त्रिपथगामिनी गंगा भी दिखलाई,
और शृंगवेरपुर जहाँ गुह मिला था ।

तभी दिखलाई दे गयी सरयू नदी,
अनेक स्तूप लगे थे उसके तट पर,
इक्ष्वाकु वंशी राजाओं के किए यज्ञ,
उनका स्मरण दिलाते खड़े वहाँ पर ।

अयोध्या के निकट आ पहुँचा विमान,
नाम सुन वानर बड़े उत्सुक हो गए,
उचक-उचक कर देखने लगे अयोध्या,
मानों कोई अमूल्य वस्तु वो पा गए ।

सप्ततितम: सर्ग:

चैत्र मास की शुक्ल पञ्चमी के दिन,
वनवास के चौदह वर्ष पूर्ण होने पर,
ऋषि भरद्वाज के आश्रम पहुँचे श्रीराम,
पूछने लगे सब कुशल है यहाँ पर ?

वे बोले, जटाजूटधारी महात्मा भरत,
प्रतीक्षा कर रहे तुम्हारी वापसी की,
तुम्हारी खडाऊँ को अपने आगे रख,
सब व्यवस्था देख रहे राज्य की ।

तुम्हारे वल्कल पहन वन जाने से,
सफल मनोरथ हो यहाँ वापसी तक,
तुम्हारा सब वृतान्त विदित है मुझे,
अपनी तपस्या के प्रभाव के बल पर ।

मैं और मेरे कुशल शिष्य भी,
प्रतिदिन आते-जाते रहते अयोध्या,
सब समाचार मुझे मिलते रहते,
पूरा नगर कर रहा तुम्हारी प्रतीक्षा ।

उधर श्रीराम जब आश्रम में पहुँचे,
मन में भरत का प्रण आया उभर,
यदि भरत को आज मिला न संदेश,
भस्म हो जाएँगे अग्नि में प्रवेश कर ।

हनुमान को कहा शीघ्र अयोध्या जाकर,
मेरा कुशल समाचर कहना भरत को,
मार्ग में शृंगवेरपुर पहुँचकर तुम,
मेरा कुशल-संवाद कहना गुह को ।

गुह मार्ग बता देगा अयोध्या का,
और भरत का भी बता देगा हाल,
भरत को कहना सुग्रीव और विभीषण,
वे दोनों भी आ रहे हैं मेरे साथ ।

भरत की मुखाकृति से देखना,
मेरे प्रति क्या भावना है उनकी,
भरे-पूरे विशाल राज्य को पाकर,
नियत न बदल सकती किसकी ?

बहुत दिनों से राज्य करने से,
यदि राज्य की हो उन्हें अभिलाषा,
तो वे ही करें पृथ्वी का पालन,
मुझे राज्य की नहीं अभिलाषा ।

मेरे अयोध्या पहुँचने से पहले,
हे हनुमान ! तुम शीघ्र लौट आओ,
मैं तुम्हारे मुख से सुनना चाहता,
जो भी हो आकर मुझे बतलाओ ।

गुह के पास पहुँच हनुमान ने,
श्रीराम का कुशल-संवाद दिया उन्हें,
कहा आज रात्रि राम आश्रम में रुकेंगे,
ऐसी आज्ञा दी है मुनि ने उन्हें ।

शृंगवेरपुर से उड़ कर हनुमान,
पहुँच गए नन्दिग्राम के उपवन में,
चीर और काला मृगचर्म पहने,
कृशकाय, तपस्वी भरत दिखे उन्हें ।

सिर पर जटाजूट, तन मैला-कुचला,
भाई के वियोग से दुखी हो रहे,
श्रीराम की चरण-पादुकाएँ रख सामने,
भरत पृथ्वी का शासन कर रहे ।

हाथ जोड़कर कहने लगे हनुमान,
कुशल-संवाद भेजा है श्रीराम ने,
त्याग दीजिए अब यह दारुण शोक,
आ मिलेंगे श्रीराम थोड़ी ही देर में ।

भाव-विभोर हो गए भरत यह सुन,
लगा लिया हनुमान को अपने हृदय से,
बोले, मनुष्य यदि जीवित रहे तो,
सौ वर्ष बाद भी आनन्द मिलता उसे ।

तुरन्त आज्ञा दी शत्रुघ्न को उन्होंने,
मार्ग ठीक कर, नगर को सजाया जाए,
सूर्योदय होने से पूर्व ही नगर की,
समस्त अट्टालिकाएँ सजा दी जाएँ ।

सुबह होते ही सब गणमान्यों सहित,
चरण पादुकाएँ अपने सिर पर रखकर,
चल पड़े भरत पैदल ही अगवानी करने,
राज-छत्र और चँवर साथ में लेकर ।

विमान पृथ्वी पर उतरा तो राम ने,
भरत को बिठा लिया विमान में,
अत्यन्त प्रसन्न हुए दोनों भाई मिल,
सुग्रीव और विभीषण से भी गले मिले ।

माताओं को प्रणाम किया राम ने,
यथायोग्य अभिवादन किया सबका,
भरत ने उन्हें पादुकाएँ पहनाई,
बोले, फल पाया मैनें आज जीने का ।

फिर नन्दिग्राम पहुँचकर भरत बोले,
ये आपका राज्य समर्पित है आपको,
आपका अनुचर बन, पालन की आज्ञा,
सुशोभित करें अब आप सिंहासन को ।

राम का राज्याभिषेक

स्नानादि कर अलंकृत हुए सब भाई,
पहले राम, फिर भरत और लक्ष्मण,
सुग्रीव और विभीषण का सत्कार हुआ,
सीताजी को रानियों ने पहनाए आभूषण ।

पुत्रवत्सला माता कौसल्या ने स्वयं,
वानर पत्नियों का किया श्रृंगार,
तब तक सुमन्त्र सुन्दर रथ ले आए,
श्रीराम उस रथ पर हुए सवार ।

घोड़ों की रास पकड़ी भरत ने,
शत्रुघ्न खड़े हुए छत्र तानकर,
शंख-दुन्दुभि आदि बजने लगे,
लक्ष्मण डुला रहे चँवर सिर पर ।

वानरों का पराक्रम वर्णन करते,
नगर वासियों का अभिनन्दन करते,
अयोध्या में प्रविष्ट हुए श्रीराम,
नगर की अद्‌भुत शोभा निरखते ।

भरत को कहकर श्रीराम ने,
सुग्रीव को अपने महल में ठहराया,
समुचित व्यवस्था करते सबकी,
राज्याभिषेक का समय हो आया ।

रत्नजड़ित चौकी पर बिठाया गया,
श्रीराम और सीताजी, दोनों को,
फिर वशिष्ठ आदि आठ मन्त्रियों ने,
जल से अभिषिक्त किया राम को ।

सबसे पहले ऋत्विक ब्राह्मणों ने,
फिर कन्याओं ने और सैनिकों ने,
प्रसन्न हो अभिषेक किया राम का,
सबसे अन्त में नगर के महाजनों ने ।

वशिष्ठजी ने उन्हें राजमुकुट पहनाया,
आभूषण पहनाए ऋत्विजों ने उन्हें,
शत्रुघ्न ने ताना उनपर सुन्दर छत्र,
चँवर डुलाए सुग्रीव और विभीषण ने ।

राज्याभिषेक हो जाने पर राम ने,
गौएँ, अशर्फी आदि दिए ब्राह्मणों को,
सुग्रीव को दी मणि-जड़ित दिव्य माला,
और मणि-जड़ित बाजूबन्द अंगद को ।

मणि-जटित मोतियों का उज्ज्वल हार,
सीताजी को उपहार में दिया राम ने,
दो निर्मल दिव्य वस्त्र और आभूषण,
कपिश्रेष्ठ हनुमान को दिए सीताजी ने ।

तब वे अपने गले का एक हार उतार,
श्रीराम और वानरों की ओर लगीं देखने,
उनके मन का अभिप्राय जान, बोले राम,
तुम जिस पर प्रसन्न हो, दे दो उसे ।

राम की अनुमति मिल जाने पर,
वो हार हनुमान को दे दिया उन्होंने,
तुरन्त हनुमानजी ने धारण कर लिया,
बड़े शोभित हुए वे उस हार को पहने ।

राम ने आलिंगन किया हनुमान का,
बोले, तुम्हारा ऋणी तो मैं रहूँगा सदा,
एक ही उपकार की कीमत मेरे प्राण,
और उपकारों की तो बात ही क्या ?

यथोचित उपहार दिए औरों को भी,
वस्त्र, आभूषणादि दे सत्कार किया,
सत्कृत और हर्षित होकर सभी ने,
अपने-अपने घर को प्रस्थान किया ।

तदन्तर लक्ष्मणजी के साथ श्रीराम,
करने लगे पृथ्वी का शासन,
सुहृदों और भाई-बन्धुओं के साथ,
अनेक यज्ञों का किया यजन ।

प्रतापी श्रीराम के राज्यकाल में,
कोई स्त्री नहीं होती थी विधवा,
सर्प आदि का भय प्रजा को नहीं,
न ही भय होता किसीको रोग का ।

चोर, डाकू आदि कहीं दिखते नहीं,
छूता तक नहीं कोई धन औरों का,
उनके शासनकाल में किसी वृद्ध ने,
मृतक-संस्कार किया न बालक का ।

धर्म-कृत्यों में तत्पर रहते थे सभी,
अपने-अपने वर्ण के अनुसार,
कोई किसी को त्रस्त न करता था,
राम दुखी होंगे ऐसा विचार ।

दीर्घ आयु जीते थे सभी प्रजाजन,
और सभी होते थे बहुत पुत्रों वाले,
सभी मौसम यथा समय होते थे,
वृक्ष होते थे बहुत फल-फूल वाले ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र,
कोई नहीं था लोभी या लालची,
सब लोग काम करते अपना-अपना,
और उससे सन्तुष्ट रहते थे सभी ।

सत्य के आश्रित थे सभी प्रजाजन,
दूर रहते थे झूठे आचरण से,
सब लोग धर्म-परायण होते थे,
युक्त होते थे शुभ लक्षणों से ।

ऐसे सुखदायी था राज्य राम का,
सब प्रजा के अति प्रिय थे राम,
राम को भी प्रजा अतिशय प्रिय थी,
अनेक वर्ष सिंहासनारूढ़ रहे श्रीराम ।

इति युद्धकाण्डम्

यह कथा विभु श्रीराम की,
भारत के मान-अभिमान की,
महलों में बीते बचपन की,
संघर्षों से निखरे यौवन की,
दुष्टों को मार मिटाने की,
ऋषियों को निर्भय करने की,
विकट धनुष भंग करने की,
वचन पिता का निभाने की,
राज्य की जगह वन जाने की,
दुर्लभ भरत से भाई की,
खड़ाऊँ से राज्य चलाने की,
सीता को हर लिए जाने की,
बाली को मार गिराने की,
सागर पर सेतु बनाने की,
राक्षस रावण के मारे जाने की,
फिर लौट अयोध्या आने की,
भाई की शपथ निभाने की,
रामराज्य प्रजा को देने की,
मानव के प्रभु बन जाने की ।